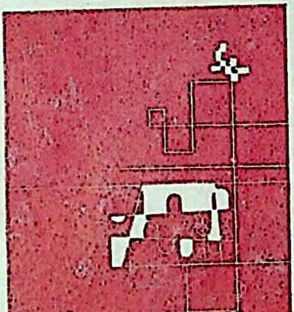

आँगन का पंछी और बनजारा मन

विद्यानिवास मिश्र

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आँगनका पंछी और बनजारा मन

☆

विद्यानिवास मिश्र

भारतीय ज्ञानपीठ काशी
की ओर से
सादर भेंट.

• भारतीय ज्ञानपीठ काशी •

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थांक—१४७

ग्रन्थमाला सम्पादक-नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन
प्रकाशक
मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ काशी
मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय वाराणसी
प्रथम संस्करण १९६२
मूल्य तीन रुपये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी सफ़ाईमें

० •

'छितवनकी छाँह' मेरे मादक दिनोंकी देन है, 'कदमकी फूली डाल' मेरे विन्ध्य-प्रवासका (जो बादमें आवास ही बन गया) फल है और 'तुम चन्दन हम पानी' मेरे संस्कृति-अन्वेषणकी उपलब्धि है। अब जो चौथा संग्रह आपके हाथोंमें है, दुविधाके क्षणोंकी सृष्टि है, इसीलिए इसका शीर्षक भी द्विविधात्मक है। बरसों तक जिस भोजपुरी वातावरणके स्मृतिचित्र उरेहता रहा, उसीमें मनचाहे पदपर जब वापिस लौटा तो दो विपरीत भावनाएँ एक साथ मनमें उठीं : अपने आँगनमें लौटनेकी खुशी और घर-पोसू होनेकी आशंका। इसलिए जहाँ मन 'आँगनका पंछी' बनकर चहका, वहीं उसका बनजारापन उसे विगत और अनागत दिशाओंमें रमने-घूमनेके लिए अकुलाता भी रहा।

सरकारी नौकरी छोड़कर जहाँ एक ओर बहुत बड़ी राहत मिली, वहीं विश्वविद्यालयका स्थिर एवं विजड़ित वातावरण देखकर परायापन भी जगा। पहली मन:स्थितिके अन्तर्गत निबन्ध 'आँगनके पंछी' हैं और दूसरी मनःस्थितिके 'बनजारे मन' हैं। इन निबन्धोंमें-से चार या पाँचको छोड़कर प्रायः सभी गोरखपुरमें ही लिखे गये हैं, अर्थात् अधिकांश सितम्बर १९५७से लेकर मार्च १९६० तककी देन हैं।

इन निबन्धोंसे मुझे खुद बहुत बड़ी शिकायत है। पटनामें मुझे एक मित्र मिले, उन्हें 'प्रभुत्वज्वर अस्पताल'की भाषा 'चन्द्रमा मनसो जातः'की भाषाके आगे बड़ी फीकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगी। एक दूसरे मित्रने उलहना दिया : अव तुम प्रकृतिसे दूर हो गये, अव तुम्हारे निवन्ध फूलों और पत्तियोंसे महकते नहीं। एक तीसरे आञ्चलिकतावादी मित्रने ताना कसा है : तुम आञ्चलिक संस्कृतिके अव व्याख्याता नहीं रहे, तुम्हारे ऊपर शहरी वुर्जुवा संस्कार हावी हो गये। मेरी शैलीके एक वहुत वड़े प्रशंसकने मेरे शब्दोंकी लयदारी क्षीण होनेपर गहरा दुःख प्रकट किया है। और भी न जाने कितने उलहने सुननेको मिले हैं; मेरे गुरुजनों तकने यह आशंका व्यक्त की है कि तुम अव प्रोफ़ेसर हो गये, तुमसे लेखकी आशा व्यर्थ है। इसीलिए अपनी रचनाको सामने रखते समय संकोच तो मुझे सदा रहा, पर आज तो भय भी घेर रहा है कि कहीं मैं अपने थोड़े-से परिमित पाठकोंकी आशा भी न तोड़ दूँ। पर क्या करूँ विवश हूँ, मैं अपने निवन्धोंसे दुराव करनेमें अपनेको अक्षम पाता हूँ। इधर इसीसे सीधे-सीधे निवन्ध न लिखकर वैयक्तिक स्नेहके आसरे पत्र ही अधिक लिख रहा हूँ। पत्रके माध्यमसे व्यक्तिको दूसरे व्यक्तिके आमने-सामने अधिक मुक्त रूपमें आनेका अवसर मिल जाता है। इन पत्रोंमें 'भ्रमरानन्दकी चिट्ठियाँ' भी हैं, जो 'सरस्वती'के सम्पादक आदरणीय भैयासाहव (पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी)को लिखी गयी हैं। एक तरहसे उन्हींके आशीर्वादकी प्रेरणासे वे लिखी गयी हैं। इस संग्रहमें इसीलिए ललित निवन्धवाली वात शायद आपको न मिले, क्योंकि मनकी ललिता सखी सुपुप्त है। हाँ, आपको वातचीतका रस मिल सकता है, क्योंकि गहन चिन्तनसे कुछ क्षण पनाह पर भावहीन पानेके लिए ही मैं अव निवन्ध लिख सकता हूँ। वातचीतके विषय भी आपके जाने-पहचाने हैं। मुझे आपको छितवनका अनदेखा पेड़ नहीं दिखलाना है, न संझाकी अनसुनी रागिनी ही सुनानी है। मेरी भाषा भी अव वह वंकिम न रही। हाँ एक वात है, आक्रोशके स्थानपर आपको व्यंग्य मिलेगा। भावुकताके लिए वदनाम रहा हूँ, अव वौद्धिक होनेकी कोशिश कर रहा हूँ। कितना वौद्धिक वन सका हूँ, यह आप जानें, अपनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओरसे बौद्धिक बननेमें कोई कसर मैंने रख नहीं छोड़ी है। बौद्धिक होने ही के कारण मैं अब विचारोंके आग्रहका भी दावा नहीं करता। मेरी बात आपके सामने इसलिए है कि आप इसे काटें। न काट सकें तो हुंकारी न भरें, उसमें अपनी बात मिलायें, अपना अनुभव मिलायें और असत्य एवं अन्यायके प्रतिरोधके लिए आप अपनी ज़बान खोलें। मेरे गुरुजीका उपदेश है : सत्यकी खोज सत्यकी प्रतिष्ठापनासे पूरी नहीं होती, असत्य और अन्यायके प्रतिरोधके बिना सत्य और न्यायकी प्रतिष्ठापना नहीं हो सकती। मैं आपसे यही निवेदन करता हूँ कि मेरे ये निबन्ध असत्यके प्रतिरोधके प्रयत्न हैं, आप इन्हें स्वीकारें चाहे न स्वीकारें, पर इन निबन्धोंके साथ अपने और अपने परिसरको पढ़ें ज़रूर।

गोरखपुरसे सबसे बड़ी शिकायत मुझे यह है कि यहाँ या तो सिद्ध बसते हैं या उनके मूड़े चेले, साधक खास करके मेरे क्षेत्रमें अत्यन्त विरल हैं; जो हैं भी वे आत्मलीन हैं। इसीसे निबन्ध लिखनेकी बाहरी स्फूर्त्ति यहाँ शून्यके बराबर है। मैंने इसी कारण बहुत कम लिखा है और लिखा है तो लुक-छिपकर लिखा है। मुझे लगता है यहाँके बोझिल वातावरणसे निबन्धकी हलकी-फुलकी बात बेमेल है, शायद वह गुनाह भी है। भावपक्ष कलापक्षके बन्दर-बाँटके आगे यह बेसिलसिलेकी वाग्धारा कितनी विवेक-शून्य और अर्थशून्य है? कवियोंको तो घूम-फिर आनेका और कोई चाहे न चाहे अपनी कविता सुना आनेका परम अधिकार प्राप्त है, आलोचनात्मक निबन्ध-लेखकको 'यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे' तीनों लाभ एक साथ प्राप्त हैं, पर कोरे निबन्ध-लेखकको तो कोई सहारा ही नहीं। उलटे आफ़त और है : हर एक पत्रिकासे माँग ज़रूर आती है, एक ललित निबन्ध भेज दीजिए। मानो ललित निबन्ध केवल अशोककी पत्ती है, जिसका एकमात्र उपयोग उत्सवको हरियालीका आभास देना है! उत्सवके साथ वह बँधा हुआ है। मैं तो अब अखबारों तकमें छपा चुका कि वह ललित निबन्धवाली अनलिमिटेड प्राइवेट कम्पनी टूट गयी। अब तो इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूकानपर केवल चिट्ठी-चौपाती लिखायी जाती है। पर क्या करूँ, बद अच्छा, बदनाम बुरा ! ऐसी बदनामी आप लोगोंने मेरी की है कि अब किसीको विश्वास ही नहीं होता कि विद्यानिवास मिश्र भी एक ज़िम्मेवार आदमी हैं, वे अब ललित निबन्ध नहीं लिखते।

ख़ैर, इस सफ़ाईसे आपको यदि कुछ सन्तोष हो गया हो तो मुझे पूर्ण विश्वास है आप इन निबन्धोंको एक बार पढ़ तो सकेंगे ही और पढ़कर मेरे पास आयें न आयें, अपने पास आप ज़रूर पहुँच सकेंगे।

गोरखपुर
फाल्गुन शुक्ल १५, २०१६ वि०

क्षमाप्रार्थी
विद्यानिवास मिश्र

पुनश्च—आभार प्रकट करना भूल गया था, क्योंकि आप सभी हमारे सामने थे। जानता हूँ, मेरे निबन्धोंके पाठक ज्यादा नहीं हैं, पर जो हैं वे नक़ली नहीं हैं, इससे मैं उनका विशेष आभारी हूँ। प्रस्तुत संग्रहके निबन्धोंकी प्रेरणा गुरुजनोंमें पण्डित क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, पण्डित हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित बलभद्रप्रसाद मिश्र एवं पण्डित उदयनारायण तिवारीसे; मित्रोंमें वात्स्यायन, रामचरण मेहरोत्रा, गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, जगतनारायण पाण्डेय, विनोद दुबे भारती, ठाकुरप्रसाद सिंह, भिक्खुदम्पति, चन्द्रदेव सिंह, श्रीलाल शुक्ल, देवर्षि सनाढ्य, विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, पद्मनारायण, देवीशंकर अवस्थी, रामनारायण उपाध्याय, परमानन्द श्रीवास्तव, रूपनारायण त्रिपाठी, रवीन्द्र भ्रमर, राजकिशोर मणि त्रिपाठी, हेमचन्द्र जोशी, शैलनाथ चतुर्वेदी, प्रभुशंकर नागर एवं रामविनायक सिंहसे मिली है। इनका मैं ऋणी हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निबन्ध-क्रम

आँगनका पंछी

१ आँगनका पंछी	...	९
२ पार्थिव धर्म	...	१७
३ आम्र-मंजरी	...	२३
४ फूल तब पात	...	३३
५ अग्रपुरुष	...	३९
६ संस्कृतिकी पाषाणी	...	४८
७ नया दौर	...	५४
८ प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल	...	६२
९ ये विपथगाएँ	...	७१
१० जयन्ती मंगला काली	...	७७
११ दिये-बातीका मेल	...	८३

बनजारा मन

१२ सदा अनन्द रहै एहि द्वारे	...	९१
१३ ड्योढ़ दर्जेका ख़ातिमा	...	१००
१४ डेरी बनाम खेती	...	१०८
१५ नर-नारायण	...	११४
१६ मलयके अंचलमें	...	१२२
१७ मेरी रूमाल खो गयी	...	१३३
१८ इकाई बनाम दहाई	...	१४१
१९ कमल-मक्षकोंके देशमें	...	१४५
२० बनजारा मन	...	१५६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आँगनका पंछी

गाँवोंमें कहा जाता है : जिस घरमें गौरैया अपना घोंसला नहीं बनाती वह घर निर्वंश हो जाता है। एक तरहसे घरके आँगनमें गौरैयोंका ढीठ होकर चहचहाना, दाने चुगकर मुड़ेरीपर बैठना, हर साँझ हर सुबह हर कहीं तिनके बिखेरना, और घूम-फिरकर फिर रातमें घर ही में बस जाना अपनी बढ़ती चाहनेवाले गृहस्थके लिए बच्चोंकी किलकारी, मीठी शरारत और निर्भय उच्छलताका प्रतीक है। फूल तो बहुत-से होते हैं : एकसे-एक चटकीले, एकसे-एक खुशबूवाले, एकसे-एक कँटीले; पर बेला, गुलाब, जूही, चमेली, कुमुद, कमल बहुत कम आँगनोंमें मिलते हैं; और अकिंचनसे-अकिंचन आँगनमें भी तुलसीकी वेदी ज़रूर मिलती है, और उस वेदीपर तुलसीकी मंजरी ज़रूर खिलती है। जिस तरह गौरैयेमें कोई रूप-रंगकी विशेषता नहीं, कण्ठमें कोई विशेष प्रकारकी विह्वलता नहीं, उड़ान भरनेकी भी कोई विशेष क्षमता नहीं, महज़ आँगनमें फुदकनेका उछाह है; उसी प्रकार तुलसीके पौधेमें न तो सघन छाँहकी शीतलता है, न गन्धका जादू, न रूपका शृंगार, केवल आँगनका दुःख-दर्द बटानेकी मनमें बड़ी उत्कण्ठा है। तुलसीकी पूजाके लिए तो खैर शास्त्रीय आधार है, पर गौरैयाके लिए मात्र जनविश्वासका यह उपहार-भर है कि वह पक्षियोंमें ब्राह्मण है, इसीलिए इतनी ढीठ, इतनी निर्भय, इतनी आत्मीय और इतनी मंगलास्पद है। जो लोग चिड़ियोंका शिकार करते भी हैं, वे गौरैया नहीं मारते. गौरैया मारना पाप समझते हैं। मैंने अपनी ससुरालके बड़े आँगनमें देखा है कि वहाँ गौरैयोंके लिए धानोंकी मोजर आँगनके चारों ओर ओरियोंके नीचे बराबर लटकायी रहती हैं और धानकी मंजरियोंकी यह पंक्ति रीतती नहीं। शायद इसलिए कि गौरैयोंको भी इनके प्रति मोह हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहरहाल उस वड़े आँगनमें वरावर धान सुखाया जाता है और उसपर वरावर गौरैयोंके दलके-दल आते रहते हैं, ज़रा-सी देरमें ज़रा-से इशारेसे ये दल तितर-वितर हो जाते हैं पर ज़रा-सी आँख ओझल होते ही फिर वहीं जम जाते हैं। घरमें रहते हुए भी ये स्वच्छन्द रहते हैं। वह आँगन बड़ा तो है पर भरा नहीं है। सालमें केवल कभी-कभी वह आँगन मेहमानकी तरह आये हुए वच्चोंसे भरता है, पर आँगन उनसे भरनेवाला है या उनसे भर चुका है, मानो इसी आशा और इसी स्मृतिमें इन गौरैयोंको ऐसा प्यार दिया जाता है।

एक दिन मैं वहीं था, जब कि किसी अखवारमें पढ़ा कि चीनमें एक नया पुरुषार्थ जागा है। वहाँकी उत्साही सरकारने गौरैयोंको खेतीका शत्रु मानकर उनके ख़िलाफ़ सामूहिक अभियान शुरू किया है। ख़ैर चीनमें अभियान हो और वह सामूहिक न हो तो यह अनहोनी वात होगी, पर जब यह पढ़ा कि कुछ लाखोंकी तादादमें वहाँके तरुण सैनिक वन्दूक़ लेकर गौरैयोंके शिकारके लिए निकल पड़े हैं तो हँसी भी आयी और रोना भी पड़ा। हँसी इसलिए कि गौरैयोंपर वीरताका अपव्यय हो रहा है और रोना इसलिए कि जिस तरीक़ेसे और जिस पैमानेपर गौरैयोंके वधकी योजना वनायी गयी है, वह कितना अमानवीय है। उसी अखवारमें पढ़ा कि वन्दूक़ दाग़-दाग़कर झुण्डके-झुण्ड इन गौरैयोंको खदेड़ते हैं और खदेड़ते ही रहते हैं ताकि ये कहीं वैठनेको ठौर न पा सकें और अन्तमें वेदम होकर ज़मीनपर आ गिरें। ऐसे मासूम और मनुष्यके प्रति सहज विश्वास रखनेवाले पक्षीको इस प्रकार निर्मूल करनेकी योजना सचमुच उन्मादसे प्रेरित नहीं है तो क्या है? मैंने भी वुद्धिवादी कविताएँ पढ़ी हैं, जिनमें ताजमहलके निर्माणपर शोक प्रकट किया गया है: जब कि मनुष्यका शव कफ़नके लिए भी तरस रहा है; जहाँ चींटियोंके लिए आटा छींटने और मछलियोंके लिए आटेकी गोली फेंकनेपर व्यंग्य कसा गया है, जब कि मनुष्य भूखों मर रहे हैं; जहाँ कि गुलावकी क्यारियोंपर तरस खाया गया है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्योंकि गेहूँकी देशमें कमी है; और जहाँ कि कलाकी उपासनाको ऐश समझा गया है, जब कि मनुष्य अभावसे ग्रस्त है। मैंने इस अभियानकी सफ़ाईके लिए उन कविताओंको एक-एक करके याद किया, पर मुझे लगा कि यह तो अभावकी पूर्तिकी योजना नहीं है, यह तो पूँजीवादको समाप्त करनेका भी आयोजन नहीं है, और यह मनुष्यकी सत्ता सृष्टिमें सर्वोपरि माननेका कोई नया तरीक़ा भी नहीं हो सकता है। गौरैया दाना चुगती है पर शायद जिस मात्रामें दाना चुगती है उससे कहीं अधिक लाभ वह खेतका इस प्रकार करती है कि अनाजमें लगनेवाले कीड़ोंको वह साफ़ करती रहती है। थोड़ी देरके लिए ही माना कि वह दाना देती नहीं केवल लेती भर है तो भी क्या इस प्रकार समूची सृष्टिकी समरसताके साथ खिलवाड़ करना उचित है? मनुष्यको इस प्रकार लाभकी आशासे नहीं मात्र अपनी प्रतिहिंसाकी भावनासे निरीह और अपने ही साथ अपने बच्चोंकी तरह निर्भय विचरनेवालोंको इस प्रकार थका-थकाके, सता-सताके मारना कहीं न्याय है? यह कौन-सा पञ्चशीलका उदाहरण है! शायद जितना अनाज गौरैयोंने खाया न होगा उससे कहीं अधिक दामकी गोलियाँ उन्हें सतानेमें बरबाद हो गयी होंगी। माना कि मनुष्यको अपने ही समान बुद्धि-बलवाले दूसरे देशवासी मनुष्यके साथ प्रतिहिंसा करनेका सहज अधिकार थोड़ी देरके लिए हो भी और वह अपने निर्माणसे अधिक अपने तुल्यबल भाईके विध्वंसपर खर्च करनेके लिए पागल हो जायें तो अनुचित नहीं, परन्तु मनुष्य जिस उत्फुल्लताके लिए, जिस मुक्तिके लिए, जिस राहतके लिए इस गला-काट व्यापारमें लगा हुआ है, उसी उत्फुल्लता, मुक्ति और राहतके इन जीते-जागते प्रतिबिम्बोंको इस प्रकार नष्ट करनेपर उतारू हो जाये, यह किस प्रकार समझमें आये?

हमारे देशमें भी ऐसे सयाने लोग हैं, जो अपने नाचकी अयोग्यता आँगनके टेढ़ेपनके ऊपर थोपनेके लिए ऐसे-ऐसे सुझाव देते हैं कि अन्न इसलिए कम पैदा हो रहा है कि चिड़ियाँ उन्हें खा जाती हैं, बन्दर उन्हें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तहस-नहस कर जाते हैं, चूहे उन्हें कुतर जाते हैं, और धूप उन्हें सुखा जाती है, इसलिए पहले इनके ऊपर नियन्त्रण होना चाहिए ताकि खेती अपने-आप बिना मनुष्यके परिश्रमके अधिक उपजाऊ हो जाये। पर चीनके ये सयाने तो इस मात्र नियन्त्रण तक सन्तुष्ट नहीं हैं, वे निर्मूलनमें विश्वास करते हैं। सृष्टिके सन्तुलन बनें-बिगड़ें, यहाँतक कि मनुष्य जिसलिए यह कर रहा है, वह भी उसे मिले न मिले, पहले वह अपने दिलका ग़ुबार तो उतार लें। और चीन प्रज्ञापारमिताका देश है, बुद्धकी मैत्रीका देश है, नये युगमें मनुष्यके उद्धारका दावा करनेवाला देश है, और है सह-अस्तित्व, परस्पर सहयोग और प्रेमकी क़सम खानेवाला देश! लगता यह है कि चीनमें जैसे कोई घर न रह गया हो, कोई आँगन न रह गया हो, किसी घर और किसी आँगनके लिए कोई मुहब्बत न रह गयी हो, किसी घर और किसी आँगनमें मुक्त हँसी न रह गयी हो, उसमें बच्चे न रह गये हों, और अगर रह भी गये हों तो किसी बच्चेके चेहरेपर विश्वासकी चमक न रह गयी हो। तभी तो इन गौरैयोंके साथ नादिरशाही बदला लिया जा रहा है। उनका अपराध केवल यही है कि वे निःशंक हैं और निःशंक होकर वे हर घरमें आनन्दके दाने बिखेर जाती हैं, जितने दाने लेती हैं, उन्हें चौगुना करके आनन्दमें परिवर्तित कर हर आँगनमें मुक्तहस्त होकर लुटा जाती हैं। उनका अपराध है कि वे ग़मगीन नहीं हैं; उनका अपराध है कि वे कबूतरकी तरह दूर तक गलेमें पाती बाँधकर पहुँचा नहीं सकतीं; उनका अपराध है कि तोताकी तरह हर एक स्तुति और हर एक गाली दुहरा नहीं सकतीं; उनका अपराध है कि वे अपने पंखोंमें सुर्ख़ी नहीं लगा सकतीं; उनका अपराध है कि उनके पास वह लाल कलँगी नहीं है, जिसको सिरमें लगाकर कूड़ेको ढेरीपर खड़े होकर रातके धुँधलकेमें बाँग दे सकें कि अरुणोदय होनेवाला है; उनका अपराध है कि वे सुबहकी साथी नहीं हैं, दोपहरकी साथी हैं; वे गगनकी पंछी नहीं, आँगनकी पंछी हैं!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझे लगता है कि गौरैयोंके खिलाफ़ यह अभियान जिन राहगीरोंने चलाया है उनको अपने राहकी मंज़िल नहीं मालूम। वे विलकुल नहीं जानते कि आखिर इस राहका अन्त कहाँ है। आज यह गौरैया हैं, कल घरकी विल्ली हो सकती हैं, परसों घरका दूसरा पशु हो सकता है; और फिर चौथे दिन घरके प्राणी भी हो सकते हैं। यह आक्रोश असीम है, उसका अन्त नहीं है। सन्तोषकी बात इतनी ही है कि भारतमें ऊपर चाहे जो हो, भीतर एक दूसरी ही शक्तिका प्रवाह है जो मनुष्यको सृष्टिसे ऊँचा बनानेपर वल नहीं देती बल्कि मनुष्यको सृष्टिके साथ एकरस बनानेमें ही उसका गौरव मानती है। गौरैयाके प्रति हमारी प्रीति हमारे निजी स्वार्थसे प्रेरित है। हम उस गौरैयाकी उच्छलता अपनी सन्तानमें पाना चाहते हैं, उस गौरैयाका सहज विश्वास अपनी आनेवाली पीढ़ीको देना चाहते हैं, जो हमसे ढिठाईके साथ हमारी विरासत छीनकर हँसते-हँसते और हमें हँसाते-हँसाते हमसे आगे वढ़ जायेगी। हम तुलसीका पौधा इसलिए नहीं लगाते कि तुलसीको वनमें कहीं जगह नहीं है; और सबसे पहले दिया तुलसीकी वेदीपर इसलिए नहीं जलाते कि उस दियेकी लौके विना तुलसीको अपने जीवनमें कोई गरमी नहीं मिलेगी; बल्कि हम तुलसीकी वेदी अपने दर्दके निवेदनके लिए रचाते हैं और तुलसीको दीप अपने सर्द दिलको गरमी पहुँचानेके लिए जलाते हैं। हम जिस पारिवारिक जीवनके अभ्यस्त हैं उसमें राग-रंग और तड़क-भड़कके लिए कोई स्थान नहीं है, केवल एक-दूसरेसे मिल-जुलकर एक-दूसरेके प्रति बिना किसी अभिमानकी तीव्रताके सहज भावसे समर्पित होने ही में हम जीवनकी अखण्डता मानते हैं। हमारा सांस्कृतिक जीवन भी इस पारिवारिक प्रेमसे आप्लावित है, देवी-देवताओंकी कल्पना, कुल-पर्वतों, कुल-नदियोंकी कल्पना, तीर्थों-धामोंकी कल्पना और आचार्यों-मठोंकी कल्पना पारिवारिक विस्तारके ही विविध रूपान्तर हैं। यही नहीं, पारिवारिक साहचर्य भाव ही हमारे साहित्यकी सबसे बड़ी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थाती है। यह कुटुम्ब-भाव ही हमें चर-अचर, जड़-चेतन जगत्के साथ कर्त्तव्य-शील बनाता है। हम इसीसे देश-कालकी सीमाओंकी तनिक भी परवाह न करके, अरबों प्रकाशवर्ष दूर नक्षत्रोंसे और युगों दूर उज्ज्वल चरित्रोंसे उसी प्रकार अपनापा जोड़ते हैं, जिस प्रकार अपने घरके किसी व्यक्तिसे। ग्रहोंकी गतिसे अपने जीवनको परखनेका विश्वास कोई अर्थ-शून्य और अन्धविश्वास नहीं है, वह कुटुम्ब-भावनाका ही हमारे विराट्दर्शी भाव-जगत्पर प्रतिक्षेप है। जैसे परिवारमें छोटेसे-छोटा और बड़ेसे-बड़ा एक-सा ही समझा जाता है, वैसे ही सृष्टिमें हम "अणोरणीयान्" और "महतो महीयान्" को एक-सी नज़रसे देखनेके आदी हैं।

गौरैया मेरे लिए छोटी नहीं है, बहुत बड़ी है, वैसे ही जैसे मेरी दो सालकी मिनी छोटी होती हुई भी मेरे लिए बहुत बड़ी है। 'बालसखा'के सम्पादक मित्रवर सोहनलाल द्विवेदीने एक बार मुझसे बालोपयोगी रचना माँगी। मैंने उन्हें मिनीका फ़ोटोग्राफ़ भेज दिया और लिखा कि इससे बड़ी रचना मैं आजतक नहीं कर पाया हूँ। मिनी बड़ी है : मेरे अर्जित परिष्कारसे, मेरी अर्जित विद्यासे और मेरी अर्जित कीर्त्तिसे; क्योंकि उसकी मुक्त हँसीमें जो मोगरे बिखर जाते हैं, उनकी सुरभिसे बड़ी कोई परिष्कृति, सिद्धि या कीर्त्ति क्या होगी ? वही मिनी जब गौरैयोंको देखकर नाचती है, उन्हें बुलाती है, उनके पास आते ही खुशीमें ताली बजाती है, उन्हें धमकाती है, फिर मनाती है, तब मुझे लगता है कि सृष्टिकी दो चरम आनन्दमयी अभिव्यक्तियाँ ओत-प्रोत हो गयी हैं—गीताकी दो ब्राह्मी स्थितियाँ एकाकार हो गयी हैं, और मुक्तिकी दो धाराएँ मिल गयी हैं। इसीलिए गौरैयोंके विरुद्ध अभियान मुझे लगता है—मेरी और न जाने कितनोंकी मिनियोंके विरुद्ध अभियान है। गौरैये और मिनियाँ राजनीतिसे कोई सरोकार नहीं रखतीं, सो मैं राजनीतिकी सतहपर इनके बारेमें नहीं सोचता, परन्तु मनुष्यकी राजनीतिका जो चरम ध्येय है उसको ज़रूर सामने रखना पड़ता है और तब मुझे बहुत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आक्रोश होता है कि भले आदमी मनुष्य वनने चले हो तो पहले मनुष्यके विश्वासकी रक्षा तो करो, वन्धुता वाँधने चले हो पर ममताओंके वाँध तो वने रहने दो ! मुक्तिपर्व मनाओ वड़ा अच्छा है, पर मुक्तिकी जीती-जागती तसवीरें क्यों फाड़ते हो ? जनका आर्थिक और नैतिक अभ्युदय चाहते हो, ठीक है, पर उसके सहज आनन्दका क्षण क्यों छीनते हो ? अपनी चित्रकलामें बाँसके झुरमुट वनाकर उसपर चिड़ियोंको विठलानेवाले चितेरे, उन चिड़ियोंको उनके वसेरोंसे क्यों उजाड़ते हो ? चिड़ियोंसे चह-चहाती लोक-कथाओंके रंग-विरंगे अनुवाद छपाते हो, छपाओ, पर उन चिड़ियोंकी चहचहान हमेशाके लिए क्यों खत्म किये दे रहे हो ? तुम अपने घर आनेवाली खुशीके लिए फ़रमान निकालकर ग़मी मनाओ, पर तुम मेरे घरकी खुशी, मेरी मिनी और उसकी सहेली गौरैयोंकी खुशीपर ग़मीकी गैस क्यों छिड़क रहे हो ?

मनमें यह आक्रोश आता है पर फिर सोचता हूँ यह आक्रोश प्रति-गामिता है । मुझे धरती और धरतीकी परम्पराकी बात-भर करनी चाहिए, धरतीके आनन्दके उत्तराधिकारियोंकी बात करनेपर आनन्दवादी कहा जाता हूँ—मेरे एक मार्क्सवादी मित्रने मुझे यही संज्ञा दे रखी है । पर क्या करूँ, गँवार आदमी हूँ : क्या कहनेसे क्या समझा जायेगा, यह जानता ही नहीं, केवल जब कहे विना रहा नहीं जाता तभी कहता हूँ । गौरैयोंने विवश किया, तुलसीने विवश किया, मिनीने विवश किया, तब मुझे कहना पड़ा । इन तीनोंमें मुझे सीताकी सुधि आती है, इन तीनोंमें मुझे धरतीका दुलार छलकता नज़र आता है, इसलिए मुझे उस दुलारके नामपर यह गुहार लगानी पड़ती है कि धरतीवादियों, धरती वही नहीं है जो तुम्हारे पैरोंके नीचे है, धरती तुम्हें अपने और असंख्य शिशुओंके साथ अपनी गोदमें भरनेवाली व्यापक सत्ता है । धरतीकी विरासत सँभालना आसान नहीं, उस विरासतके असंख्य साझीदारोंको मिलाये विना तुम घरके कर्त्ता नहीं वन सकते। यह गौरैया, यह तुलसी, यह मेरी—और मेरी ही नहीं, तुम्हारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी—मिनी तो उस विरासतकी असली मालिक हैं, यही है कि वे बिना माँगे अपनी मिल्कियत लुटा देती हैं। उनके प्रति कृतज्ञ बनो, अपने आप तुम्हारी बढ़ती होगी ! क्योंकि—

"अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खलमन्दिरम्।
अनुल्लङ्घ्य सतां मार्गं यत्स्वल्पमपि तद् बहु॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पार्थिव धर्म

कई वार मैंने इसपर विचार किया है कि पृथ्वीका धर्म वस्तुतः क्या है, पृथ्वीकी वह कौन-सी नैसर्गिक और सतत प्रक्रिया है, जो उसे पृथ्वीका अभिधान पृथ्वीका आकर्षण दिये हुए है, उसका कौन-सा गुण है जो उसकी नानाभाषी, नानाधर्मी सन्तानोंको स्नेहावद्ध किये हुए है? मैं शास्त्रोंके पास गया। न्यायशास्त्रने वतलाया पृथ्वीका धर्म गन्ध है, मिट्टीकी पहचान उसकी सुरभि है। ज्योतिषने कहा पृथ्वीका गुण उसकी परिक्रमा है, परिक्रमा, जो वह अपनी करती है और फिर सूर्यकी करती है, तथा परिक्रमा, जो उसकी की जाती है चन्द्र-द्वारा; विराट् पुरुषकी आँखके इशारे नाचनेवाली पृथ्वीके पीछे विराट् पुरुषका मन चक्कर काटा करता है। इतिहासने अपनी सम्मति दी: पृथ्वीका धर्म है क्षमा, जिससे उपमा बनी है 'क्षमया पृथिवीसमः', और इसी एक धर्मके कारण अनेक उलट-फेर, आँधी-पानी, प्लव-विप्लव और सुख-दुःख झेलकर भी वह धरा बनी हुई है। पुराणोंने अपनी पुरानी कहानी दुहरायी: पृथ्वी गौ है, दूध देना उसका धर्म है, जब उसने दूध देना किसी समय वन्द कर दिया तो पृथुने हिमालयको वत्स बनाकर उसे दुहा था और उसी दिनसे वह पृथ्वी कहलायी। साहित्यने संकेत दिया कि पृथ्वीका धर्म है लोगोंको जोड़ना, वह इसीलिए प्रत्येक परिणय-वेलामें वेदी बनकर उभरती है, जिसकी साक्षीके बिना दो प्राणी नहीं मिल पाते, वह प्रत्येक युग-सन्ध्यामें वलिवेदी बनकर जगती है, जिसमें पिछले युग-द्वारा दी गयी आहुति अगले युगकी विभूति बनकर वितरित होती है।

जनश्रुतियोंने सबसे पीछे कानोंमें चुपकेसे कहा कि पृथ्वीका धर्म है, मही बनना, धरित्री बनना, अवनी बनना, जगद्धात्री बनना, वही करवट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बदलनेसे लेकर चलनेकी प्रेरणा देती है, वही बिना दूसरोंको दुःख पहुँचाये फैलनेकी शिक्षा देती है और वही बिना पक्षपात किये त्रस्तोंको अभय देती है; उसीने ऋषियोंके शोणितकी बूँद-बूँदसे घड़ा भरा, उस घड़ेमें राजर्षि जनकके हलकी नोक लगी, वह घड़ा ही सीता बना और धराकी धरोहर सीताने अपने उज्ज्वल चरित्रसे जनक और दशरथके कुल तो तारे ही, नारी जाति-मात्रको महनीय बना दिया। सीताका तप आगसे प्रखर और गंगाकी धारासे तीक्ष्ण निकला, जिसे सुर-असुर-नर सँभाल न सके। अन्तमें धरतीने अपनेमें ही उस तपःप्रतिमाको लीन कर लिया, धरतीकी बेटी धरतीके हृदयसे निकलीं, धरतीके हृदयमें समा गयीं। सीताका पृथ्वी-प्रवेश नारीके सात्त्विक दर्प, ओज और तेजके प्रस्फुटनकी घटना थी; उससे पृथ्वीका गौरव और बढ़ गया। आज भी पृथ्वीकी रागिनीका अमर्ष अभी नहीं मिटा, पृथ्वीके विश्वासको जो आघात लगा, वह अभी नहीं भरा। अवध और तिरहुतके गाँवोंमें अगहनमें लड़कीकी शादी करनी वर्जित हो गयी; जाने क्या हो जाये, सीताका विवाह अगहनमें हुआ था, सीताके ऊपर ऐसी दारुण विपत्ति पड़ी कि—

"सीता लकड़ीके कइली अँजोर संतति मुख देखेली !"

लकड़ियोंकी आग तेज करके सीताको रोशनी करनी पड़ी और तब उन्होंने पुत्रका मुख देखा ! यह दुःख बिसराया नहीं जा सकता। पुत्रजन्मके उत्सवके समय भी जनपदवधू सीताकी सुधि किये बिना नहीं रहती—

"छापक पेड़ छिउलिया तौ पतवन झपसल
ए हो ओहि तरे ठाढ़ी सितल देई मनहीं बिसोह करैं हो।
के मोर दुइ खर तुरिहैं त मड़ई बनइहैं
ए हो के मोर दियना जरइहै त बिपति गँवाइब हो।"

पत्तोंसे झपसा हुआ पलाशका पेड़ है, पुत्र-प्रसवका समय ज्यों-ज्यों निकट आता है, सीता त्यों-त्यों और चिन्ताकुल होती है : कौन मेरे लिए दो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खर तोड़कर कुटी वनायेगा, कौन मेरे लिए दीप जलायेगा, कौन प्रसूतिगृह की रखवाली करेगा, कौन मेरे पास बैठेगा, जिससे मेरा कष्ट हलका होगा !

पर वह सीता फिर रामके पास जाती नहीं, वशिष्ठ मनाते हैं तो उत्तर देती हैं—

"अगियामें राम मोहि डरलै लाइ भूँजि कढ़लें
गुरु गरुहे गरभसे निकरलें त कइसे चित्त मिलिहै।"

और अन्तमें राम मनाने आये, पर उन्हें केवल एकटक देखकर बिना कुछ वोले सीता धरतीमें समा गयीं।

मुझे लगा पृथ्वीका धर्म यही तो है : न्यायकी रक्षा और अन्यायके प्रतिरोधके लिए निरन्तर संघर्ष, सब कुछ सहकर भी अपना मस्तक ऊँचा रखनेका संकल्प, निष्ठा और अनन्यताकी अग्नि-परीक्षामें खरा निकलकर भी अयाची और अदीन बने रहनेका कठोर आत्मवल, अपनेको अर्पित करके भी अर्पित रूपमें अपना अस्तित्व अमिट रखनेका यत्न, और आकाश देवताकी आराधना करते हुए भी धरतीके प्रति ममत्व—यही तो पार्थिव धर्म है।

जब भगवान् श्रीकृष्णने राजसूय यज्ञमें आये हुए पाहुनोंके पैर पखारे और उनकी पद-धूलि अपने मस्तकपर धारण की तो उन्होंने इसी पार्थिव धर्मकी वन्दना की। जब उद्धवने गोकुलसे विदाई ली तो उनको लगा कि मैं इस गोकुलकी धरतीका अंग क्यों न हुआ—

"आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥"

तब उद्धवने भी पार्थिव पूजाके प्रति प्रणिपात किया। जब शंकर भगवान् प्रयागके पथमें कोढ़ीका रूप धारण करके बैठे और पार्वतीसे कहा कि जो सचमुचमें भावनापूर्वक यहाँ तीर्थमें आया होगा, उसीकी पद-धूलिसे यह कोढ़ अच्छा होगा, तो उन्होंने भी पार्थिव रजकी महिमा प्रमाणित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की। जब भागवतकारने धर्मकी अन्तिम आकांक्षा ठहरायी तो उन्हें लगा—

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्"

दुःखीकी पीड़ा हरनेसे बढ़कर कोई कामना नहीं हो सकती, तब उन्होंने भी पार्थिव आकांक्षाकी उत्कृष्टता ही सिद्ध की। जब सिद्धार्थने शिकारीके बाणसे बिंधे हुए हंसकी रक्षा करके उसपर अपना स्वत्व स्थापित किया तो उन्होंने भी पार्थिव न्यायकी प्रतिष्ठापना की। जब शंकराचार्यको संन्यास लेनेपर भी अपने पार्थिव शरीरकी जननीके शरीरको पार्थिवसात् करनेके लिए लकड़ी जुटानी पड़ी तो उन्हें भी पार्थिव कर्त्तव्यकी अवशता स्वीकारनी पड़ी। जब कालिदासने वियोगशृंगारकी अप्रतिम रचना 'मेघदूत'को अपने हाथमें लिया तो ताज़े जुते खेतमें-से पहला डोंगरा पड़ने पर निकलनेवाली सोंधी सुगन्धने उन्हें बाँध लिया और वे विरहका सन्देश भूलकर पृथ्वीका सौन्दर्य बखानने लगे, नदियाँ, पर्वत, वन, प्रदेश पग-पगपर उनके सन्देश और सन्देशहरको बिलमाने लगे; तब उन्होंने भी पार्थिव सौन्दर्यके दुर्निवार वेगमें प्रवाहित होनेमें ही काव्यकी सार्थकता मानी। जब ज्ञानकी वारिने सेवाका व्रत लिया, जब ब्रह्माके कमण्डलुसे निकली हुई जलराशिने विष्णुका पद-प्रक्षालन किया, तभी वह तपकी और सुकृतकी परम पावन जलधारा बनीं और विरजा होने हीके कारण वे जनतारिणी बनीं; और तब गंगाने पार्थिव परम्पराका ही आकार ग्रहण किया।

भगवान् शंकरकी अष्टमूर्त्तिमें इसीलिए कदाचित् पृथ्वीको मूर्धन्य स्थान दिया गया। पार्थिवेश्वरके रूपमें ही उनकी सर्वसुलभ प्रतिष्ठा हो सकती है। और पार्थिव शिव ही पारमार्थिक शिव हैं, क्योंकि उसी रूपमें वे जन-जनकी हथेलीमें आते हैं। पार्थिव कल्याण परमार्थका पहला सोपान है, पार्थिव साधना मनुष्यके ईश्वर होनेकी पहली शर्त्त है। इसीलिए कहा गया है कि—

"सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृथ्वीके सुनहले फूल उसीके हाथ लगते हैं जो या तो सूरमा हो, जीवनके संघर्षमें अविरत लगा हुआ हो, या जो विद्याओंमें पारंगत हो अर्थात् जिसने जगत्को उसकी समग्रतामें देखा हो, या जो सेवाका व्रती हो अर्थात् जिसने पार्थिव शिवकी साधना की हो। पृथ्वीपर जन्म लेकर जिसको उसके सुनहले फूलोंका सौरभ नहीं मिला, उसका जन्म व्यर्थ है; जिसने अपने साधन-धामको आकाशकी ओर निहारते रहनेमें ही खपा डाला, जिसने वायुकी साधनामें ही अपनी साँसकी साँसत की, जिसने पञ्चाग्नि-तपको ही परम पुरुषार्थ माना और जिसने जल-समाधिको ही सबसे बड़ी समाधि मानी, वह पार्थिव कीर्त्तिके सौरभसे वंचित ही रहा। योगी-यती जाने कितने हुए और उनके नाम भी धूलिमें मिल गये, पर जिसने अपने योगको पार्थिव साधनासे जोड़ा, जिसने अपनी समाधि पार्थिव सौन्दर्यमें समाहित की, जिसने अपना तप पार्थिव तापको आत्मसात् करनेमें विनियोजित किया, जिसने अपने जीवन-रसमें पार्थिव कुसुमोंका रस घोला, जिसने अपने शब्दमें पार्थिव रागिनीका स्पन्दन दिया, उसीको पृथ्वीने यश दिया, उसीको पृथ्वीने अमृतत्व दिया, उसीको पृथ्वीने अपना वात्सल्य दिया, और उसीको पृथ्वीने अपने ही नहीं अपने साथी-सँघाती दूसरे महाभूतोंके भी बन्धनसे मोक्ष दिया।

शायद पार्थिव धर्मकी चरम चरितार्थता इसीलिए साहित्य-रचनामें है कि साहित्यकार अपनी दृष्टि खुली रखकर भी अपने मनको पृथ्वीके सुख-दुःखमें बाँधे रहता है, इस बन्धनमें ही वह अपनी और अपने सहृदय पाठककी निवृत्ति पानेकी कोशिश करता रहता है, उसे दूसरी सिद्धि कभी विचलित नहीं करती, उसने सिद्धि-शिलाओंको गंगाकी धारामें सदा विसर्जित किया है और अपनी पृथ्वीको "उदार रमणीया" मानकर ही देवी-देवताओं को पार्थिव आकार दिये हैं। कमसे-कम भारतीय साहित्यकी परम्परा कभी अपार्थिव नहीं रही, इसीलिए लोक-साहित्य और लोकोत्तर-साहित्य, यह द्वैत हमारे लिए तबतक अपरिचित रहा, जबतक हमने अपनी आँखोंमें पश्चिमके उपलोचन नहीं लगाये और तब हमने लोक-साहित्यकी एक पृथक्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोटि बड़ी अनुकम्पावश स्वीकार की। यह सोचने-समझनेकी कोशिश नहीं की कि जो लोकमें ओत-प्रोत न हो उसकी कोई सार्थकता और किसीके लिए चाहे कितनी हो, साहित्यकारके लिए—पार्थिव साधकके लिए—नगण्य है। कल्पनाको अबाबीलके पंख या हारिलका हठ देनेका अभ्यास जिन्हें हो उन्हें हो, हमारे मानसका हंस पृथ्वीके पंकमें उपजे कमलके डंठलका पाथेय लिये बिना कभी उड़ना नहीं चाहता। हमने इसीलिए पृथ्वी, वाणी और मनुष्यकी इन्द्रिय-वृत्ति तीनोंको एक ही संज्ञा दी है—'गौ' : गतिशीलता, परार्थता और ऋजुताका समाहार। इसीलिए हम माताके उपासक हैं। हमने पृथ्वीको इसीलिए अपनी धात्री स्वीकार किया है, जिसके ऋणसे हम कभी मुक्त होनेकी चाहना नहीं करते। हमारे पार्थिव धर्मका परिमाप हमारी तितिक्षा उतनी नहीं है, जितनी हमारी उदारता ग्रहण करनेमें और सर्वतोभावेन प्रदान करनेमें। हम महत्ताको इसीलिए दानकी मात्रासे नहीं, दान-भावनाकी शुद्धता और निःशेषतासे नापते आये हैं। इसीलिए शायद हमने अपने देशकी पृथ्वीको कर्मभूमिकी संज्ञा दी है, उसको भोग-भूमिका अधिकार हमने जान-बूझकर नहीं दिया है, जिससे हम ईश्वरमें न बँधें बल्कि ईश्वर हमारे स्नेहमें बँधे। यही हमारा गौरव है, और यही हमारी सबसे बड़ी आशा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आम्र-मंजरी

आज वसन्तपंचमी है, सरस्वती-पूजा और वसन्त-स्वागत दोनों करनेका आज विधान है और हमारी पूजा और स्वागतके विहित उपकरण हैं : आमके बौर। आम हमारे देशका सबसे रसमय फल है, साथ ही हमारे गाँवोंके उपान्तका सबसे बड़ा शृंगार। हमारी लोक-कल्पनामें सौन्दर्यके साफल्य और माङ्गल्यके प्रतीक रूपमें वह गृहीत है। आमके बौरसे वर-वधूकी मौलि सजानेका विधान है, स्वप्नमें आमकी गौध देखनेपर पुत्रोत्पत्तिका फलादेश है। आम्र-पल्लवोंसे वन्दनवार सजाये विना मण्डपकी शोभाकी पूर्णता नहीं है, आम्र-पल्लवोंसे ढँके विना मंगलकलशकी मंगलवारि असुरक्षित है, आम्र-मंजरीके प्राशनमें सर्पविष-निवारणकी क्षमता मानी जाती है।

इसलिए हम भी आमकी मंजरीसे अपने नये वसन्तका अभिनन्दन और अपनी सनातन सरस्वतीकी अर्चना करना चाहते हैं। यह ज़रूर है कि इस शहरी जङ्गलमें आमके वृक्ष कहाँ मिलें, आलोंमें रखी कालिदासकी वसन्तवासित पोथियाँ हैं, उन्हींका आमोद है और हम वहींसे बौर चुनना चाहते हैं। इसके लिए हम वाणके कृतज्ञ हैं कि उन्होंने कालिदासके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते समय सहकार-मंजरीका स्मरण किया है और कहा है—

"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥"

अर्थात् कालिदासकी लेखनीसे उद्‌गत काव्योक्तियोंमें किस सहृदयकी प्रीति नहीं जगेगी, क्योंकि उनमें सहकार-मंजरीकी मधुरता और सान्द्रता (घनापन) दोनों एक साथ हैं। वाण प्रकृतिके बहुत बड़े पारखियोंमें गिने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाते हैं, साथ ही सहृदयता और रस-मर्मज्ञतामें भी वे अनुपम हैं; पर उन्होंने मंजरीको मधुर क्यों कहा यह विचारणीय है। जिन्होंने वसन्त-पञ्चमी और होलिकाके अवसरोंपर आम्र-मंजरीका प्राशन किया है, वे इसके कषाय रसको न भूले होंगे—तब इसे बाणने मधुर क्यों कहा ? सान्द्रता तो ठीक है कि आमकी मंजरी व्यक्तिगत फूल न होकर स्तवक होती है, जिसमें एक किंजल्क दूसरे किंजल्कसे अनुस्यूत होता है, पर मधुर कहनेका क्या तात्पर्य है ? यह भी ठीक है कि कालिदासके काव्यमें समष्टि रूपमें सौन्दर्य है, एकांश रूपमें नहीं, और साथ ही कालिदासमें सहकार-मंजरीकी ही तरह वसन्ती-बयारका संस्पर्श है। अनंग और अनंग-दहन दोनोंके वे शृंगार भी हैं, मदनोत्सव और शिवरात्रि दोनोंमें मंजरी इन देवताओंके सिरपर चढ़ानेका विधान है तो कालिदासके ही द्वारा इन्हें क्रमशः रति और उमाकी पुनः प्राप्ति भी होती है। यही नहीं, आम्र-मंजरी भी जैसे पल्लव आनेके पहले आती है वैसे ही कालिदासकी उक्तिमें अर्थका सौरभ शब्दोंके पल्लव-जालकी प्रतीक्षा नहीं करता, वह केवल मधुर कण्ठवाली कोयलको आमन्त्रित करता है, शायद वाणीकी इस साकार मधुरताकी अधिवसति होनेके ही कारण कालिदासकी कविता और आम्र-मंजरी मधुर कही गयी हैं, अथवा आम्र-मंजरीकी परिणति मधुर आम्र-फलमें होनेके कारण उसे मधुर कहा गया है। कालिदासकी भी काव्यप्रतिभाका उत्कर्ष 'अभिज्ञान-शाकुन्तल'की सृष्टिमें होनेके कारण उसे फलिनी-मंजरीकी उपमा दी गयी है।

अस्तु, जो भी कारण हो, कालिदासने स्वयं आम्र-मंजरीके प्रति ऐकान्तिक अनुराग स्थल-स्थलपर प्रकट किया है और 'सौभाग्यफलवती चारुता'के प्रतिपादनमें उन्होंने सर्वत्र मंजरीको स्मरण किया है।

सबसे पहले 'कुमारसम्भव'को ही लें जिसमें रूपकी सार्थकता तपश्चर्यामें प्रतिपादित करके कालिदासने शिव-पार्वती परिणय कराया है। कालिदास भारतीय विचार-धाराके समग्र रूपमें सच्चे प्रतिनिधि हैं, वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामकी प्रयोजकता सन्तानोत्पत्ति मानते हैं : 'प्रजायै गृहमेधिनाम्', यही उनका आदर्श है और कामाचरणको बराबर तपाके ही उन्होंने रघु, भरत, स्कन्द जैसे ओजस्वी पुत्रोंकी उत्पत्ति चाही है। आम्र-मंजरीकी फल-परिणामिनी प्रवृत्तिको देखकर ही उन्होंने कुसुमधन्वाके पञ्चशरोंमें इसे अग्रस्थान दिया है—

"सद्यः प्रवालोद्गमचारुपत्रे नीते समाप्तिं नवचूतबाणे।
निवेशयामास मधुद्विरेफान्नामाक्षराणीव मनोभवस्य।"

—कु० सं० ३।२७

उन्मादन वसन्तके वर्णनके उपक्रममें कालिदास कहते हैं—आमका नया बौर कामदेवका बाण बनकर तैयार हो रहा है, नये निकले हुए लाल-लाल किसलय ही उसके पुच्छ हैं और बाण तैयार होनेपर उसपर बैठे हुए भौंरे ही कामदेवके नामोंके काले-काले अक्षर उत्कीर्ण किये गये हैं, मानो इस बाणपर कामदेवकी मुहर ही लग गयी : यह कामकी आयत्त सम्पत्ति हो गया।

आम्र-मंजरीमें संलग्न किसलयांकुरोंमें जो कषाय रस होता है, वह नवप्रणयके कषायका ही प्रतिरूप है। पर दोनोंका आस्वादन आपाततः कषाय होते हुए भी अन्तमें मधुर कण्ठ देनेवाला होता है। प्रथम प्रणयकी स्मृतिकी वाणी बनकर पुंस्कोकिल माननियोंके मान खण्ड-खण्ड कर देता है—

"चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज।
मनस्विनीमानविघातदक्षं तदेव जातं वचनं स्मरस्य॥"

—कु० सं० ३।३२

काव्य-परम्परामें कामके पञ्चशरोंके सम्मोहन, मारण, उच्चाटन, वशीकरण और बाजीकरण पाँच नाम आते हैं, जिनको आम्र, नवमल्लिका, अशोक, कमल और कर्णिकार इन पाँच फूलोंसे आरोपित माना गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालिदासने इस क्रममें आम्र-मंजरीको अग्रस्थान देते हुए सम्मोहन-रूपी वाण बताया है (कु० सं० ३ । ६६)। कामकी प्रक्रियाका उदय ही सम्मोहन अर्थात् रूपाकर्षण—या दूसरे शब्दोंमें कहे हुए मनःसंगसे होता है। इसीलिए कामके भस्मीभूत हो जानेपर रति सहकार-मंजरीकी निष्प्रयोजनतापर खेद प्रकट करती हुई कहती हैं—

"हरितारुणचारुवन्धतः कलपुंस्कोकिलशव्दसूचितः ।
वद सम्प्रति कस्य वाणतां नवचूतप्रसवो गमिष्यति ॥"
—कु० सं० ४ । १४

यही नहीं, कामको प्रेताञ्जलि देनेके लिए उसे सहकार-मंजरीके अलावा कोई दूसरी वस्तु इस जगत्में नहीं दिखती, वह वसन्तसे यही कहती है कि—

"परलोकविधौ च माधव स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवाः ।
निवपेः सहकारमञ्जरी प्रियचूतप्रसवो हि ते सखा ॥"

अर्थात् केवल लोक-विधिमें ही नहीं परकोल-विधिमें भी, केवल इस जन्ममें ही नहीं वल्कि जन्मान्तरमें भी, मंजरीकी गन्ध संस्कार बनकर मनोभवके अन्तरमें छायी रहती है क्योंकि फलकी आकांक्षामें ही कामकी सार्थकता है, पुत्रकी प्राप्तिमें ही परम्पराकी अभिवृद्धिकी आशा सन्निहित है।

इसीलिए जब मदनके बलिदान और पार्वतीके तप दोनोंके समवेत परिणामके रूपमें शिवका अनुराग जगा तो कालिदासको पार्वतीके फलितार्थ और अवन्ध्यरूप सौन्दर्यमें पुनः आम्र-मंजरीसे लदी हुई डालकी सदृशता दिखी—

"तया व्याहृतसन्देशा सा वभौ निभृता प्रिये ।
चूतयष्टिरिवाभ्याशे मधौ परभृतोन्मुखी ॥"
—कु० सं० ६।२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शशिशेखर जब अपने असली वेशमें पार्वतीके कोपके स्फुरणके बीच ही प्रकट हुए तो पार्वती मंजरियोंसे लदी हुई आमकी टहनीकी तरह विनत और मौन हो गयीं। प्रणयका सन्देश तो कोकिल-स्वरमें उनकी सखी सुना ही चुकी थी। विवाह सम्पन्न होनेपर तो जैसे आमका वृक्ष शीघ्र फलित होनेके लिए कलम बनकर नयी क्यारोमें आरोपित होकर कृतार्थ हो जाता है, उसी तरह पार्वती भी शिवकी अर्धांगिनी बनकर तेजस्वी सन्तानकी माता बननेके लिए प्रस्तुत हो गयीं—'आम्रतेव सहकारतां ययौ।'

सहकारका यह इतिहास केवल दाम्पत्य रागके लिए बिम्ब-ग्रहणमें उपयोगमें आये, सो बात नहीं। कालिदासके मनमें आमका वृक्ष निखिल माङ्गलिकताके शाश्वत प्रतीकके रूपमें बसा हुआ है। जहाँ उन्हें अपनी मङ्गलाकांक्षाको पूर्ण देखना होता है, वहाँ उन्हें तुरत यह बिम्ब स्मरण हो आता है। सुदक्षिणा और दिलीपके सेवाव्रतके मधुर फलके रूपमें रघु हुए, जिनके रघु नाममें ही यह आकांक्षा की गयी कि यह वंशको लाँघकर आगे चला जायेगा, इसीसे दिलीपके सुराजके प्रति लोग रघुके सुशासनका फल पाकर उसी तरह अनुत्सुक हो गये, जिस तरह आममें फल आनेपर उसकी मंजरीके प्रति हो जाते हैं—

"मन्दोत्कण्ठाः कृतास्तेन गुणाधिकतया गुरौ।
फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः॥"

—रघु० ४।९

जब-जब कालिदासको पूर्णकामना प्रतिपाद्य होती है तब-तब उन्हें आम्र-मंजरीका सहारा लेनेकी विवशता हो जाती है। इन्दुमती अपने स्वयंवरमें भाँति-भाँतिके प्रतापी, सुन्दर और सुख्यात राजाओंकी परिक्रमा करती हुई भी तबतक साकांक्ष रहती है जबतक उसे समग्र सुन्दर अज तक सुनन्दा नहीं पहुँचाती। और वहाँ पहुँचाते ही सुनन्दाका कार्य समाप्त हो जाता है, इन्दुमती वहाँ जाकर पूर्णकाम हो जाती है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"तं प्राप्य सर्वावयवानवद्यं व्यावर्त्ततान्योपगमात् कुमारी।
न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली॥"
—रघु० ६।६९

कौमार्यकी परिसमाप्ति, नववयका उत्कर्ष और प्रणयकी आकांक्षा कमल और चन्द्रमासे पूरी नहीं होती। ये उपमान आह्लादके हैं, तृप्तिके नहीं; पर फूलोंसे लदा हुआ आमका वृक्ष तृप्तिका कोष है। भौंरोंकी पाँति सहकार-मंजरीके स्तवकोंपर पहुँचकर फिर अन्यत्र नहीं जाती। यही नहीं, लता चाहे अशोककी हो, नवज्योत्स्नाकी हो या मालतीकी हो, जबतक वह आमपर नहीं चढ़ती तबतक उसका सौन्दर्य व्यर्थ बना रहता है। इसलिए पार्वती, इन्दुमती, शकुन्तला कोई भी नारी हों, उनके लिए शिव, अज और दुष्यन्त जैसे पूर्ण पुरुषकी सहकारताकी अपेक्षा है। और इन्दुमतीका पाणिग्रहण करके अज भी कम कृतार्थ नहीं होते, अशोकलताके अरुणिम पल्लवोंमें ही आमके पल्लव मिलकर शोभित होते हैं—

"हस्तेन हस्तं परिगृह्य वध्वाः स राजसूनुः सुतरां चकासे।
अनन्तराशोकलताप्रवालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन॥"
—रघु० ७।२२

मंगलपरिणयकी यह सुखद स्मृति ही इन्दुमतीके वियोगकी वेलामें अजको शूल बन जाती है और अपने विवाहकी स्मृतिके रूपमें लगाये आम्रवृक्षके साथ इन्दुमतीने जो फलिनी लताकी जोड़ी लगायी थी, वह विवाह-विधि नहीं रच सकी थी, उसके लिए इन्दुमतीको उपालम्भ देनेका उन्हें अवसर भी मिल जाता है—

"मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ।
अविधाय विवाहसत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसाम्प्रतम्॥"

जोड़ी लगाकर बिना विवाह-संस्कार पूरा किये चले जाना बहुत बड़े अनुत्तरदायित्वका काम है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहकारका साहचर्य मंगलात्मक न हो, यह कालिदासको सह्य नहीं है। सहकारकी सेवा उनकी दृष्टिमें निसर्ग सौन्दर्यकी साधना है। इसीसे उनकी सर्वोत्कृष्ट निसर्ग सुन्दर प्रतिमा शकुन्तलाका शरीर सहकारके लिए अर्पित है। इसी सहकारकी क्यारियोंमें घड़ेपर-घड़े जल भरते समय और इसकी जोड़ी नवज्योत्स्नाके साथ लगाते समय उसकी अपनी जोड़ी लगी और उसने अनुसूया सखीको यह स्पष्ट रूपसे बतलाया कि "जिस दिन मैं नवज्योत्स्नाको भूल जाऊँगी उस दिन मैं स्वयं अपनेको भूल जाऊँगी।" कण्वने भी शकुन्तला-दुष्यन्तके गान्धर्व-विवाहका समाचार पाकर इसी बातकी बादमें पुष्टि की कि उस नवमालिकाकी तरह ही शकुन्तलाने अपने लिए योग्य सहकार अपने पुण्योंके कारण पा लिया, मेरी चिन्ता दूर हो गयी—

"सङ्कल्पितं प्रथममेव मया तवार्थं,
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय-
मस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः॥"

शकुन्तलाका यह सहकार-तादात्म्य जब तपमें प्रमादके कारण, तपोमूर्तिके प्रति अनवधानके कारण तिरोहित हो जाता है और शकुन्तला अभिज्ञान-चिह्नके बिना ही दुष्यन्तके समक्ष उपस्थित होनेवाली है तब कवि एक बार दुष्यन्तको हंसपदिकाके गीतके द्वारा स्मरण दिलाता है—

"अहिणवमहुलोलुवो भवं
तह परिचुंबिअ चूअमंजरीं।
कमलवसइ मेत्तणिव्वुओ
महुअर वीसरिसोसि णं कहं॥"

"नये-नये मधुके लोभी भौंरे, तुम किस तरह इतनी प्रगाढ़ताके साथ उस आम्र-मंजरीको चूमकर उसे आज अपने कमल-वृन्दमें मग्न होकर भूल गये?" कविका स्पष्ट संकेत है कि फलगर्भ-मंजरीको भूलकर निष्फल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमल-परागमें लोभ करना दुष्यन्तके लिए कैसा अभिशाप सिद्ध होगा और किस तरह वह इस मंजरीके लिए एक दिन आकुल हो उठेगा, इसका रंचमात्र भी उसे आज ज्ञान नहीं है। पर शकुन्तलाने कामचार किया था, वह सम्मोहन मात्र ही बनकर रह गयी थी। उसका गर्भधारण सन्तानके कल्याणके लिए अभी तपकी अपेक्षा रखता था। कालिदासका प्रेम ऐसा सस्ता नहीं। इसीसे ऐसे अधकचरे प्रेममें अन्तराय लाना उन्हें अभीष्ट हो जाता है। दोनों प्रणयियोंको विरहकी साधनामें निखरना पड़ता है। यह अवश्य है कि दुष्यन्तका अपराध गुरुतर होनेके कारण उसका दुःख-भार सविशेष है। शकुन्तलाके लिए तो एक आसरा है—भरत; पर दुष्यन्तको अपने सन्तानवान् होनेका पता नहीं है। उसे जब यह ज्ञान होता है कि उसने शकुन्तलाको पाकर भी खो दिया है तब उसके लिए वसन्त अभिशाप बन जाता है। वह डौंड़ी पिटवाकर वसन्तोत्सवके आयोजन बन्द करा देता है क्योंकि वसन्तोत्सवका मुख्यतम अंग है प्रथम आम्र-कुसुमकी पूजा। इसीसे वसन्तका अभिनन्दन होता है, वासन्ती वाणीका अभिनन्दन होता है और वसन्तसखा मदनका अभिनन्दन होता है। पर इस ऋतुमंगलको स्वयं ही मन-ही-मन बहुत बड़ी ग्लानि है कि इसके साथ एकाकार मानवाली शकुन्तलाको यह अवमान भोगना पड़ा। इसीसे नवयौवनाएँ कलित कण्ठसे गा-गाकर उसके कोरकको विकसित करनेका आमन्त्रण देती हैं—

"आतम्महरिअपण्डुर जीविदसव्वं वसंतमासस्स।
दिट्ठोसि चूदकोरअ उदुमंगल तुमं पसाएमि॥"

परन्तु आमकी कली सहमी-सहमी रहती है, मदनकी धनु अधखिली कली संकोचके कारण अधखिंची-सी रहती है, कोयलका कण्ठ रुँधा-रुँधा-सा रहता है, क्योंकि शकुन्तलाको प्रकृति-कन्याकी स्मृति जगी है, फलिनीलता की याद उमड़ी है—

"चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
सन्नद्धं यदपि स्थितं कुरवकं तत्कोरकावस्थया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तस्यार्धकृष्टं शरम् ॥''

दुष्यन्त अपने दुस्सह विरहमें आत्म-विनोदके लिए शकुन्तलाका चित्र उरेहने वैठता है, उसी अवस्थानमें जिसके साथ वह तदाकार थी, जिसके साथ वह सर्वप्रथम दृष्टिगोचर हुई थी। नये-नये सिंचे आमके तरुण वृक्षके पार्श्वमें, नवपल्लवोंकी ओर स्निग्ध दृष्टिसे देखती हुई, पानी ढोते-ढोते अंग-प्रत्यंगसे शिथिल और खिन्न पर आँखोंमें परम प्रीतिका रस छलकाती हुई मुनि-कन्या दुष्यन्तकी तूलिकामें वरवस उतरती चली जाती है। चित्र पूरा उतरते-उतरते दुष्यन्त तपके वातावरणके प्रति अवनत हो उठता है और उस वातावरणको दूषित करनेका अपराध उसके मनको विलकुल द्रवित कर देता है। तभी उन्हें शकुन्तलासे पुनः संयोग होनेका एक सुखद अवसर इन्द्रके सन्देश-द्वारा प्राप्त होता है। इन्द्रके सन्देशपर दुष्यन्त उनकी सहायताके लिए जाते हैं और पुनः मारीच ऋषिके तपोवनमें अपनी फलिनीको फल-सहित प्राप्त करते हैं।

कालिदासने अपने राष्ट्रीय काव्य मेघदूतमें भी भारतकी धरित्रीकी पूर्ण मातृता अंकित करते समय आम्र-कूटका सहारा लिया है। मेघदूत जब पके आमोंसे लदे हुए आम्र-कूटपर पहुँचेगा तो उसे धरतीका आँचल भरा हुआ मिलेगा। अमरोंकी स्त्रियाँ धरित्रीके इस सौभाग्यसे स्पृहा करेंगी, क्योंकि उन्हें मातृत्वका यह सुख कहाँ लभ्य है! इन पीले-पीले आमोंके वीचमें काले मेघकी स्थिति माँ धरित्रीके स्तनके रसस्रावकी ओर अकृत मनोरथ अमर दम्पतियोंका ध्यान आकृष्ट करेगी—

"छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्येश्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार यह सिद्ध है कि कालिदासका मंजरीके प्रति पक्षपात सकारण है। कालिदास वसन्तके केवल उन्मादन रूपके उपासक नहीं, वे वसन्तकी, वसन्तके प्रतिस्पर्धी पार्थिव सौन्दर्यकी, और वसन्तके आश्रित यौवनके नवप्रणयकी सान्द्रता और मधुरताके भक्त हैं। उनके लिए रागात्मक ऐन्द्रिय व्यापार विश्वके साथ समरस होनेका संकेत है, सहजात पाप (ओरिजिनल सिन) नहीं है। इसीलिए वे गृहस्थ जीवनके कवि हैं, जिसका विलास उपकरण है साध्य नहीं, साध्य है तप और तपके द्वारा ओजस्विनी परम्पराकी अभिवृद्धि। कालिदास प्रेममें सान्द्रता इसीलिए माँगते हैं कि वह रन्ध्रहीन हो, वह क्षणिक न हो, वह बिलगाव, अकेलेपन और गर्वातिशयसे न ग्रस्त हो, वह अपनेको विश्वकी परस्पर संश्लेषात्मक प्रक्रियाका एक छोटा-सा अवयव मानकर चले। तभी उसका परिणाम मधुर होगा, उसका रस चेतन और अचेतन दोनों जगत्में माधुर्यको प्रवाहित करेगा, मनुष्यको वाणी देगा, प्रकृतिको कोकिलकी काकली देगा।

वसन्तपंचमीके दिन भारतीय सरस्वतीकी जिस आम्र-मंजरीसे अर्चना की जाती है उसमें कालिदासकी वाणीका आमोद अभिन्न रूपसे मिला हुआ है और इसीसे वसन्तके इस मंगलपर्वका सान्द्र स्पर्श मालविकाग्निमित्रके नायककी भाँति रोम-रोममें व्याप्त है।* कालिदास हमारी काव्यभारतीके प्रत्येक अर्थमें नवकुसुमित सहकार हैं, वसन्तके सन्देशवाहक हैं, शिव-परिणयके स्रष्टा हैं और साक्षात् वाग्देवताके रूप हैं। सरस्वतीको जो मंजरी चढ़ायी जा रही है वह कालिदासके करतलका भी स्पर्श कर रही है, इतना स्मरण ही इस मंजरीमें और सुवास भर देगा।

---

*अङ्गे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्यापृतो माधवेन।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फूल तब पात

कालिदासका वसन्त-वर्णन इसीसे प्रारम्भ होता है—

"कुसुमजन्म ततो नवपल्लवा-
स्तदनुषट्पदकोकिलकूजितम् ।"

अर्थात् पहले फूल आते हैं, तव पल्लव आते हैं, तब भौंरे आते हैं और तव कोयल बोलती है। पहले कोई भी सिद्धान्त हो, कोई भी मत हो, पूर्ण विकसित रूपमें सामने आता है, उसकी कीर्तिका सौरभ दूर-दूरतक अनुकूल पवन-द्वारा बगराया जाता है, तब उसमें नये विचारोंकी नयी कोपलें भी निकलती हैं। इन नयी कोपलोंके सघन पत्रजालमें नये पक्षी कल-कूजन करने आते हैं। जब फूल खिलते हैं तो पेड़ पत्रहीन हो जाते हैं। पेड़की प्राचीनता फूलोंके अनुरूप ही नवीन रूप धारण करनेके लिए विकल हो जाती है। जब नया पथ मनुष्यको मुक्ति देनेके लिए आगे आता है तो मनुष्यके प्राचीन संस्कार भी पुनर्जीवन प्राप्त करनेके लिए झर-झरकर नये संस्कारोंको पल्लवित करनेके लिए उत्सुक हो जाते हैं। जो नया विचार देता है, जो नये संस्कारकी रचना करता है और जो नये ऋतुका मङ्गल-गीत गानेके लिए आता है वह पहले अपने परिसरको कुसुमित और सुरभित करके आता है। भगवान् कृष्ण हों, बुद्ध हों, शंकराचार्य हों, तुलसीदास हों, समर्थ रामदास हों, तिलक हों—प्रत्येक विचारकने जब-जब मनुष्यको उन्नयनकी नयी भूमिका दी, तब-तब उसने पहले अपनी परम्पराको पूर्ण रूपमें अपने मानसके उपवनमें पुष्पित किया। उसकी सुरभिसे उसने स्वयंको सुवासित किया और उसके दिगन्तव्यापी प्रभावको अपने अन्तर्मनमें भरा और तब जाकर उस वृक्षमें नये पल्लव, नयी शोभा, नये गुंजार और नये फल दिये। दर्शनके क्षेत्रमें दार्शनिकोंने जिसे पूर्वपक्ष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहा, उसके साथ सबसे अधिक न्याय किया। इन्होंने पूर्वपक्षकी स्थापनामें अपने मतके पूर्वरागसे अपनेको मुक्त रखा। वेदान्त, न्याय, मीमांसा या बौद्ध दर्शनोंसे हमें इस उदार परम्पराकी प्रेरणा आज भी मिलती है कि हम कोई भी बात अपनी ओरसे जोड़ें, इसके पहले जहाँतक वह बात जिस रूपमें जिस बलके साथ कही जा चुकी है, स्थापित की जा चुकी है, उसी रूपमें उसे अपनाकर तब अपनी बात कहनेकी कोशिश करें।

कुछ लोग इसीको सत्यकी अनुसन्धित्साका मार्ग कहते हैं। कुछ विशिष्ट लोगोंका मत है कि भारतीय संस्कृतिके मूलमें शिवकी खोज या समरसता, समानुपात, सन्तुलन, समन्वय आदिमें सौन्दर्यकी खोजसे कहीं अधिक सत्यकी खोजका उपादान है। सत्यको जब-जब अन्वेषकोंने अवरुद्ध देखा, उसके जाज्वल्यमान मुखपर हिरण्यमय पात्रका ढक्कन देखा, तब-तब उन्होंने इसके लिए प्रयत्न किया कि वह ढक्कन खुले, सत्यको गति मिले, सत्यको ऋतुका सहारा मिले; और सत्य नदीकी धाराका अनुगामी नहीं, बल्कि अग्रगामी बने। और इसीलिए उसके लिए सत्य चिर नवीन होनेके साथ-साथ सनातन भी है, उसी प्रकार जिस प्रकार काशीका गंगाजल गंगोत्रीके गंगाजलसे विलग होनेके साथ-साथ अविलग भी है।

देखा यह भी जाता है कि अपनी बात नये ढंगसे कहनेका दुःसाहस तो लोग करते हैं, परन्तु वे उस सत्यके प्रति अकृतज्ञ हो जाते हैं जिसने उनको नयी बात कहनेका संकेत किया और साहस दिया। यही अकृतज्ञता उन्हें छिन्नसूत्र बना देती है, अविनयशील बना देती है और प्रायः इसीलिए उन्हें स्वयंकी नवीनताओंका बन्दी बना देती है। वे अपनी नवीनतासे इस तरह घिर जाते हैं, जिस तरह रेशमका कीड़ा अपने ही बनाये हुए रेशमके जालसे। नयी सृष्टि करनेका अभिमान उन्हें जीवन्मृत बना देता है।

इसका कारण क्या है? इसका कारण है विशद दृष्टिका अभाव; इसका कारण है मानसिक चित्रपटकी संकीर्णता, जिसपर समग्र रूपमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्य उतर नहीं पाता। सत्य बराबर अंश-सत्यके रूपमें आता है, अंश-सत्यके रूपमें उस चित्रपटसे वह बाहर विकीर्ण होता है। विकीर्ण होनेपर जैसे टूटे हुए काँचके टुकड़ेमें शुभ्र ज्योति रंगीन होकर प्रतिसंक्रान्त होती है, उसी तरह उज्ज्वल सत्य बहुरंगी बनकर सामने आता है। जो दूसरेकी बात समझनेकी कोशिश नहीं करेगा, वह अपनी बात समझानेकी आशा कैसे कर सकता है! जो मनुष्यकी अबतककी यात्राको नकार करके अपनी जीवन-यात्रा प्रारम्भ करेगा, वह कैसे इस बातकी अपेक्षा कर सकता है कि उसकी बात भी नकारी न जाये! जीवनको जिसने निषेध-रूपमें देखा, वह अपनेको विधि-रूपमें खड़ा करनेका प्रयत्न कैसे कर सकता है! अपनेको विज्ञानके प्रवाहके रूपमें जबतक हम नहीं देख पाते तबतक हम कैसे यह विश्वास कर सकते हैं कि हम दूसरोंको आगे बढ़ायेंगे!

इसीलिए मैंने कहा: पहले फूल तब पात, पहले वाद फिर विवाद। जिस चीज़का हमें खण्डन करना हो, वह चीज़ जबतक हमारे सामने स्पष्ट रूपमें न हो तबतक उसका खण्डन कोई माने नहीं रखता। खण्डनके लिए खण्डन तर्कके लिए भोजन हो सकता है, पर न तो अपने मनको उससे तृप्ति मिलती है और न विश्वको उससे कुछ लाभ होता है। जिन लोगोंने 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' कहा उनके सामने सिद्धान्त रुचिकर हो न हो, उसके प्रति आदर रखनेकी भावना थी। वे यह भली-भाँति समझते थे कि अपनेको समग्र रूपमें वह तभी रख सकता है जब वे जिनसे प्रभावित होकर, प्रेरित होकर, या उद्दीपित होकर, विचारोंकी धरतीमें नये छेंव लगाने आये हों, उनकी हर एक चोटको और उनकी कमायी हुई धरतीको उन्हें अच्छी तरहसे नापना होगा। भगवान् कृष्णने गीतामें जब यह कहा कि जो जाननेवाला है उसके लिए सकाम कर्मकी घोषणा करनेवाली वाणीका महत्त्व उतना ही है जितना नदीके तीरपर रहनेवाले व्यक्तिके लिए छोटी-सी कुइयाँका जिसमें-से पानी बड़ी मुश्किलसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निकल पाता है, तो उनका तात्पर्य यह न था कि वह वाणी व्यर्थ है, बल्कि यह कि वह वाणी अपेक्षाकृत कम महत्त्व रखती है। एक बड़े आशयके सामने वह छोटा-सा आशय है। बुद्धने भी जब चार आर्य-सत्योंकी व्याख्या दी तब उन्होंने उपनिषद्के मार्गका प्रत्याख्यान नहीं किया, केवल नैतिक मूल्योंपर अपना विशेष बल दिया। शंकराचार्यने जब नरमें नारायणका आवाहन किया और 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:'की उद्घोषणा की तब उन्होंने न केवल उपनिषदोंके आत्मवादका प्रतिपादन किया बल्कि उस आत्मवादमें बौद्धोंके विज्ञानवादका सिंचन देकर विश्व-सत्यको नयी प्रतिष्ठा दी। गोस्वामी तुलसीदासने भी जब मानव-मर्यादाको आकार देनेके लिए रामचरितकी सृष्टि की तो उन्होंने कर्म, भक्ति और ज्ञानकी समस्त उपलब्धियोंको समेटकर, निगम आगमकी बातें समझकर, आस्तिक और नास्तिक दर्शनोंकी अतल गहराईमें पैठकर, और उस अतल गहराईसे मुक्ताओंको निकालकर रामचरितके तागेमें गूँथनेकी कोशिश की। मोती नये नहीं थे, तागा नया नहीं था, मोतीमें तागा बेंधकर डालनेकी युक्ति भी नयी न थी—पर माला नयी थी और वह माला अद्वितीय थी। वैसी माला पहले कभी बनी नहीं और आगे भी उसका कोई सानी न हुआ। किसीका महत्त्व उन्होंने कम नहीं किया, पर उनका महत्त्व अपने आप इतना बढ़ा कि शिवकी साधनामें उनका ग्रन्थ सबसे सुलभ संबल बन गया।

तिलकने जब जीवन-क्षेत्रमें प्रवेश किया तो उनके सामने गीतासे लेकर तुलसीदास और तुलसीदाससे भी आगे समर्थ रामदासकी महान् परम्परा थी। इस परम्परामें उनकी निष्ठा थी, पर अपने काल और अपने देशके लिए उन्हें यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि इस परम्पराको नया प्रवाह दिया जाये। उन्होंने गीता-जैसे प्राचीन ग्रन्थको लिया और कहनेको तो उन्होंने इसकी टीका लिखी, पर वास्तविकता यह थी कि उन्होंने जीवनके नये मान स्थापित किये और विचारके नये आधार खड़े

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किये और जातीय शक्तिको नयी अभिव्यक्ति प्रदान की। पर उन्होंने भी अपने देशवासियोंको आत्मोद्धारके लिए प्रवोधित करते हुए भी पश्चिमी विचारकों, विशेष रूपसे पश्चिमी नीति-शास्त्रियोंके मतवादका भी उपकार निस्संकोच भावसे ग्रहण किया। उन्होंने पश्चिमको नीतिको आत्मौपम्यकी दृष्टि दी।

इन उदाहरणोंका उल्लेख इसलिए कर रहा हूँ कि इनके माध्यमसे सत्यकी निरन्तरता और गतिशीलताका अन्दाज़ आप कुछ लगा सकें और आप यह समझ सकें कि सत्यका स्वरूप अविच्छिन्न है, अखण्ड है, निरन्तर है, ऊर्ध्वमुख है और वह एक वंशमें कभी पाया नहीं जा सकता, कभी देखा तक नहीं जा सकता। बुद्धिके विलासके लिए कभी-कभी तर्कका उपयोग इसलिए किया जाता है कि कोई भी मत ठहर न सके और इसीलिए इस प्रकारके विवाद किये जाते हैं जिनको तर्क-शास्त्रमें वितण्डा कहा है। वितण्डा एक घातक प्रवृत्ति है : जो उसे करता है अप्रतिष्ठा उसीकी होती है, जिसकी अप्रतिष्ठा करनेका वह प्रयत्न करता है उसकी नहीं। मनुष्यको यह अधिकार नहीं है कि वह मनुष्यको अवमाननाकी दृष्टिसे देखे। साथ ही उसका यह कर्त्तव्य भी नहीं है कि वह केवल अन्धा वना दूसरेके हाथमें पड़ी लकड़ीके सहारे चलता रहे। जैसे विना अनुभवके ज्ञान पंगु है वैसे ही विना वादके विवाद अर्थ-शून्य है। एक तरहसे ज्ञान भी अनुभवपूर्वक होनेपर ही फलवान् होता है, मुक्ति दिलाता है। अनुभव-शून्य ज्ञान तो वन्धनका कारण वनता है। उसी तरह जो व्यक्ति अपनी और अपनी जातिकी मुक्तिकी वात सोचता है उसे पहले मनुष्यकी मुक्तिके पूर्व-साधनों और सिद्धियोंका अनुभव प्राप्त करना ही होता है। इसी अनुभवके बलपर वह नये मुक्ति-पथका साक्षात्कार या ज्ञान प्राप्त कर पाता है। जैसे भाषामें लक्षणा भी प्रायः किसी-न-किसी रूढ़िको लेकर चलती है वैसे ही ज्ञानके क्षेत्रमें भी नये लक्ष्य बिना पूर्व-अनुभवोंके संकेतके प्राप्त नहीं किये जा सकते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोई माने या न माने, एक-दूसरेके प्रति अविश्वास, आशंका और भय जबतक बना रहता है, तबतक उसके प्रतिकारकी भावना भी प्रबल रहती है और तब ऐसे मतोंका स्थापन और उनका प्रचार होता है जो पहलेसे ही यह मानकर चलते हैं कि वे असमाधेय हैं। अभय और विश्वासके वातावरणमें ही स्वस्थ वाद-विवाद पनपते हैं। विवादके पहले तभी वादकी अपरिहार्य आवश्यकता समझी जाती है और एक-दूसरेके पूरकके रूपमें वाद-विवाद गृहीत होते हैं। परस्पर विश्वासका वातावरण और वाद-विवादकी स्वस्थ परम्परा दोनोंके बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ठीक उसी तरह यदि कालिदासकी बात फिर दुहराऊँ तो कोकिलका मंगल-गीत और कुसुमके जन्मके बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, वसन्तकी सार्थकता आम्र-मंजरीमें है, आम्र-मंजरी की सार्थकता किसलयकी लालीमें, और किसलयोंका अनुराग भी तभी सार्थक है जब वह कोकिलके अनुरंजित कण्ठका सौभाग्य पाती है। परम्परा भी ज्ञानकी हो चाहे कलाकी हो, तभी सार्थक है जब वह प्राचीनके प्रति ग्रहिष्णु हो और अनागतके प्रति समर्पणशील हो। 'सर्वत्र विजयमिच्छेत् शिष्यादिच्छेत्पराजयम्'का तात्पर्य केवल यही है कि सबके ऊपर विजय पानेकी कामना करके भी शिष्यसे पराजित होनेकी कामना ही गुरुकी सबसे बड़ी कामना है। शिष्य-द्वारा पराजित होनेमें गुरुकी सबसे बड़ी विजय है। आदर और स्नेहसे प्रेरित विनय और समर्पण आदान और प्रदान : यही संस्कृति-प्रवाहिनीकी दो मर्यादाएँ हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्रपुरुष

युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें बड़ा अजीब समा था, कौरवों और पाण्डवों के सुखद मिलनके ऐसे दृश्य सामने आ रहे थे जो फिर कभी आनेवाले न थे। दुर्योधन राजाओंसे युधिष्ठिरकी ओरसे भेंट ले रहे थे, कृपाचार्य रत्न-राशि सँभाल रहे थे, दुःशासन भोजनके अधिकारी बने हुए थे, संजयको राजनयिक स्वागत–अधिकारी (चीफ़ ऑव प्रोटोकोल) होनेके कारण दम लेनेकी भी फ़ुरसत नहीं थी, कर्ण कोषागारके मालिक थे, विदुर व्ययका नियन्त्रण कर रहे थे, भीष्म और द्रोणाचार्य क्या करना चाहिए और क्या नहीं इसके मन्त्रदाता बने हुए थे, जरासन्धके पुत्र सहदेव धर्मराज युधिष्ठिरके निजी सचिव और सहायकका कार्य कर रहे थे। भारत भूमण्डलके अनेक राजा युधिष्ठिरके उस भव्य प्रासादमें इस तरह विचरण कर रहे थे मानो प्रासाद उन्हींका हो। युधिष्ठिरने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था, और युधिष्ठिरको यह अर्पण-बुद्धि देनेवाले महान् नीतिज्ञ भगवान् कृष्ण पाण्डवोंकी विनय अपनेमें समेटते हुए ब्राह्मणोंके पैर धुलाने और जूठी पत्तल बटोरनेमें लगे थे। उस युगके नारायण नरकी सेवामें तत्पर थे।

जब नारद अनेक ऋषियोंके साथ यज्ञके न्योतेमें आये तो उन्होंने सिर उठाकर देखा कि कोई ऐसा है जिनके आगे उनका हृदय झुकता हो। उन्हें कोई न मिला : उनके वन्दनीय तो उनके पैर पखारनेके लिए उन्हींकी नज़रके नीचे झुके हुए थे, पर देवर्षिकी नज़र ऊँचे उठी थी, वे अपने आराध्यको न देख पाये। ज्यौनार हुई, तब भी सिर उठाकर उन्होंने देखा। ऊँचेसे-ऊँचे मस्तक देखे, पर किसीकी भी दृष्टिके आगे उनकी दृष्टि झुक न सकी। उन्होंने सोचा यहाँ आना व्यर्थ हुआ। राजसूय यज्ञ समाप्त हुआ, अर्घ्यदान प्रारम्भ हुआ। भीष्मसे युधिष्ठिरने पूछा : अर्घ्यदान किस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार चले। भीष्मने प्रस्ताव किया : आपको समस्त समुपस्थित ज्ञानियों एवं वीरोंको सम्मानपूर्वक अर्घ्य देना चाहिए, परन्तु पहला अर्घ्य उसीको देना चाहिए जो इस युगके सबसे महापुरुष हों; मेरी रायमें भगवान् कृष्ण ही ऐसे व्यक्ति हैं जो ज्ञानियोंमें ज्ञानी और वीरोंमें वीर हैं, वे इस युगकी प्रत्येक क्रियामें हैं, इस युगके प्रत्येक ध्यानमें हैं और इस युगकी प्रत्येक सिद्धिमें हैं—उन्हींको पहले अर्घ्य दो। सहदेव अर्घ्यकी सामग्री लाने चले।

भगवान् कृष्णका पता न था। अभी जूठी पत्तलोंके अम्बारमें वे खड़े थे। नारद उन्हें बुलाने गये और उन्हें देखते ही उनकी दृष्टि खुल गयी। देखा नारायण तो यहाँ हैं—वही नारायण जो महर्षि भृगुके चरण-चिह्न धारण करनेमें अपना गौरव मानते हैं, जो सदा नर-रूपमें ही अपना अस्तित्व सार्थक मानते हैं, वही नारायण हैं जिन्होंने अभी कुछ ही वर्षों पूर्व नारदकी परीक्षा ली थी ! भगवान्ने नारदसे कहा था कि मेरे सिरमें भयङ्कर पीड़ा है, दवा लाओ। नारदने पूछा : वह दवा क्या है ? भगवान्ने वतलाया कि जव-जब उन्हें यह शिरोवेदना हुई है तव-तव भक्तके चरणकी धूलि लगानेसे ही अच्छी हुई है। नारदने कहा इसमें कौन वड़ी वात है, मैं अभी लाता हूँ। वे प्रह्लादके पास गये। प्रह्लादने भगवान्की शिरोवेदनाका वृत्तान्त सुनते ही अश्रुपात शुरू कर दिया, पर जव चरणधूलि देनेकी बात आयी तो सहम गये : भगवान्के सिरपर मेरी चरण-धूलि, यह पाप न होगा ? ध्रुवने इनकार किया। हनुमानने इनकार किया। कोई भी भक्त न मिला जो अपनी चरण-धूलि भगवान्के सिरमें लगानेके लिए देनेको प्रस्तुत हो। नारद निराश होकर लौट आये। भगवान्ने कहा कि मैं पीड़ासे विकल हूँ, तुम अपनी ही चरण-धूलि क्यों नहीं देते ? नारदको जैसे झटका लगा, अपने चरणसे धूलि लेने जा ही रहे थे कि उनकी अन्तरात्मा काँप उठी और उन्होंने तुरन्त क्षमा माँगी : भगवन्, यह कैसे सम्भव होगा, ज़िन्दगी भरकी साध है आपके चरणोंकी पूजा और उस साधपर इस तरह पानी फिरे कि मेरी ही चरण-धूलि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आपके मस्तकपर लगे ! भगवान्‌ने कहा : तुम गोकुलमें गोपियोंके पास जाओ, वे अपनी चरण-धूलि दे देंगी। नारद दौड़े-दौड़े गोकुल गये, गोपियोंसे रोकर कहा कि भगवान् सिर-दर्दसे छटपटा रहे हैं, भक्तकी चरण-धूलिसे ही यह सिर-दर्द अच्छा होगा, तुम लोगोंमें कोई क्या एक चुटकी अपनी चरण-धूलि दे देगी ? गोपियोंमें चरण-धूलि देनेकी होड़ मच गयी। चरण-धूलिकी पूरी गठरी बाँधकर नारदको वहाँसे लौटना पड़ा, नारद रास्ते-भर गठरीके बोझसे कसमसाते हुए आये और मन-ही-मन उस कुसाइतको कोसते रहे जब भगवान्‌के सिर-दर्दकी दवाके लिए उन्होंने अपनी सेवा अर्पित की थी। परन्तु जब उन्होंने गठरी उतारकर भगवान्‌के पास रखी तो देखा भगवान् मुसकरा रहे हैं। नारदको क्रोध आया : मेरी मुसीबत हो गयी और इन्हें मज़ाक़ सूझा है ! भगवान्‌ने पूछा कि मेरा सबसे बड़ा भक्त कौन है ? नारदके दृष्टि-पटल अबतक खुल गये थे। उन्होंने कहा : गोपियाँ ही हैं, क्योंकि उन्होंने भगवान्‌को अपना पाप-पुण्य, यश-अपयश सब-कुछ सौंप दिया है, हम लोगोंको तो अपने पुण्यसे मोह है।

नारदने उस क्षणका स्मरण किया और फिर प्रभुसे निवेदन किया : सभामें अर्घ्यदान लेने चलें।

नारदके अनुरोधपर भगवान् कृष्ण सभामें जब प्रविष्ट हुए उस समय चेदिराज शिशुपाल फुफकार रहा था : इस नदीपुत्रने जो प्रस्ताव किया है वह धर्म-विरुद्ध है—अगर राजाकी ही पूजा करनी थी तो द्रुपदकी करते, अगर ऋत्विक्‌की करनी थी तो द्रोणकी करते, अगर विद्वान्‌की पूजा करनी थी तो द्वैपायन व्यासकी करते, किन्तु इतने गुरुजनोंके रहते हुए एवं स्वयं वसुदेवके रहते हुए भी वासुदेवकी पूजा कितनी अशोभन बात है ! जन्मके दास, सिंहासनके अयोग्य, मथुरा छोड़कर भागनेवाले कायर, नाचने-गानेवाले अहीर और जूठी पत्तल बटोरनेवालेकी पूजा किस भयसे कर रहे हो ?

युधिष्ठिरने समझाया : इतने बड़े-बूढ़े, राजा-महाराजा और विद्वान् कृष्ण-पूजाका समर्थन कर रहे हैं, तुमसे वे बड़े ही हैं, तुम क्यों इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार युग-पुरुषकी अवमानना कर रहे हो? भीष्मको युधिष्ठिरकी सान्त्वना बुरी लगी, उन्होंने स्पष्ट कहा—

"नास्मा अनुनयो देयो नायमर्हति सान्त्वनम्।
लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽर्हणां नानुमन्यते ॥"

इससे अनुनय करनेकी आवश्यकता नहीं, इसको समझाने-बुझानेकी ज़रूरत नहीं, क्योंकि यह लोकवृद्ध कृष्णकी पूजाका अपमान कर रहा है।

"न केवलं वयं कामाच्चेदिराज जनार्दनम्।
न सम्बन्धं पुरस्कृत्य कृतार्थं वा कथंचन ॥
अर्चामहेऽर्चितं सद्भिर्भुवि भौमसुखावहम्।
यशः शौर्यमयं चास्य विज्ञायार्चां प्रयुज्महे ॥
वेद-वेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यमितं तथा।
नृणां हि लोके कस्यास्ति विशिष्टं केशवादृते ॥
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्त्तिर्बुद्धिसन्नया।
सन्ततिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते ॥
तमिमं सर्वसम्पन्नं प्राचार्यं पितरं गुरुम्।
अर्च्यमर्चितमर्चार्हं सर्वे सम्मन्तुमर्हथ ॥"

हम लोग भगवान् कृष्णकी पूजा इसलिए नहीं कर रहे हैं कि वे हमारे सम्बन्धी हैं, उनका हमारे ऊपर बहुत-सा उपकार है और उनसे हमें कुछ प्राप्तिकी आशा है। हम उनकी पूजा इसलिए कर रहे हैं कि उनकी पूजा समस्त लोक करता है, उनकी पूजा लोक-कल्याण और लोक-मंगलके लिए है। हम 'उनकी' पूजा नहीं कर रहे हैं बल्कि उनके यश, शौर्य और जयकी पूजा कर रहे हैं। वेद और वेदान्तोंका ज्ञान और अमित बल—ये दोनों मनुष्योंमें किसीके पास हैं सिवाय कृष्णके? पूर्ण-पुरुषके लिए जो गुण अपेक्षित हैं—दानशीलता, दक्षता, विद्या, वीरता, लज्जा, कीर्ति, बुद्धि, विनय, धन, धैर्य, सन्तोष और दूसरोंके भरणकी क्षमता—ये समस्त गुण भगवान् अच्युतमें एक साथ सन्निविष्ट हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसीलिए हम उन्हें लोक-दृष्टिसे आचार्य मानकर, पिता मानकर और गुरु मानकर, लोक-पूजित मानकर पूजाके योग्य समझते हैं और यह भी विश्वास करते हैं कि आप सभीका समर्थन प्राप्त होगा।

पर शिशुपालकी वाणीमें काल समाया हुआ था, उसकी जीभ कतरनीकी तरह चलती रही। शिशुपाल कृष्णकी फुआका लड़का था। उसके संस्कार राजमदके संस्कार थे और उसकी आलोचना उस दुर्बुद्धकी आलोचना थी जो लोक-दृष्टिसे संसारको नहीं देखता है, जो अपने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यसे संसारको देखता है। जितने दुर्गुण उसने कृष्णमें गिनाये, वे ही कृष्ण-चरित्रकी अनुपम विशिष्टता हैं। जरासन्धके पुत्र सहदेवने भीष्मका समर्थन किया: इसलिए नहीं कि कृष्णने उसके पिताका वध कराया था और वह उनसे भयभीत था बल्कि उसने पिता-द्वारा प्रदत्त बन्दी-जीवनसे हजारों राजाओंको मोक्ष दिलानेवाले महापुरुषमें उस युगके उद्धारकके दर्शन किये थे और इसीलिए वह इनका प्रशंसक बन गया था। सहदेवने कहा कि आज जो राजा हैं वे अपने-लिए जीते हैं। कौन है जो अत्याचारके कारण गोपालन-व्रत धारण करने वाले क्षत्रियोंमें वीरताका और विश्वासका संचरण करा सके? कौन है जो नरकासुर-जैसे अत्याचारीके नारकीय कारागारसे युगकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियोंका उद्धार कर सके? केवल उद्धार ही नहीं उनको ग्रहण करके समाजोचित सम्मान भी दे सके? कौन है जिसे सौन्दर्य और समृद्धिके बीच रहते हुए भी अपनी इन्द्रियोंपर इतना नियन्त्रण प्राप्त हो कि सारे संसारके ऐश्वर्य, प्रेम और स्नेहके ममत्व क्षण-भरके लिए उसे विचलित न कर सकें? कौन है जो राजाओंको जीतकर भी अपनेको राज्य-सिंहासनसे अलग रख सके? कौन है जो सान्दीपन, घोर, आंगिरस-जैसे विद्वानोंसे विद्या प्राप्त करके भी अपनेको ब्राह्मणों, ज्ञानियों और पण्डितोंका सेवक कहलानेमें गौरव अनुभव करता हो? कौन है जो अपने पास सब-कुछ रहते हुए भी अपनेको निष्किञ्चन मानता हो और निष्किञ्चन जनोंकी सेवामें,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहायतामें, भक्तिमें अपनी भावना अर्पण करता हो? लोकके धर्म को निभाते हुए जो लोकातीत हो; प्रतिदिनके पारिवारिक राग-द्वेषमें रहते हुए भी जो संन्यासी हो, राजाओंके राजनैतिक दाँव-पेचके बीच खेलते हुए भी जो सहज हो, और सब प्रकारसे शक्तिमान् होते हुए भी जो केवल अपनी सहज स्मितिके ही प्रयोगसे विश्वको अपने वशमें करने-वाला हो—वह कौन-सा महारथी है, वह कौन-सा विद्वान् है, और वह कौन-सा योगी है? जीवनके जितने भी दुःख-सुख हो सकते हैं उनके बीच अपनेको आगे ले चलनेका इतना अभ्यास और किसे है? कारागारमें जन्म; दूसरेके घर पालन-पोषण; बचपनसे ही उत्पातों एवं शत्रुओंके घातोंका प्रतिकार करनेका अभ्यास; संघर्षमें भी आनन्द—उल्लासका रास मचानेकी उमंग; प्रियसे-प्रिय जनको छोड़कर भी उनके विरहमें अकातर रहनेका आत्मबल; माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, किसीके भी स्नेहमें न बँधनेका संकल्प; एक महान् युगके निर्माणका स्वप्न लेकर भी अपनेको हीनतमसे-हीनतम स्थितियोंमें डालनेकी विनम्रता; केवल लोकहितके लिए बड़ीसे-बड़ी राज-शक्तिको धूलमें मिलाते समय तनिक भी क्लेश और तनिक भी भय न रखनेका निरन्तर अभ्यास; समाजकी बिखरी हुई इकाइओंको जोड़नेकी कुशलता; जीवनके मानको उसके मन्दीके युगमें भी ऊपर चढ़ानेकी प्रतिभा; ज्ञानके ऊँचेसे-ऊँचे धरातलपर रहते हुए भी साधारणसे-साधारण, पामरसे-पामर और तुच्छसे-तुच्छ जनकी आकांक्षा-को समझने, लालसाको तृप्ति देने और उत्साहको बढ़ानेकी उदारता; नाते-रिश्ते निभाते हुए भी, प्रेमभाव रखते हुए भी, यथोचित आदर-सत्कार करते हुए भी भारतके जनके ही साथ एकाकार होनेकी आजीवन प्रक्रिया—ये तमाम बातें एक-साथ और किस महापुरुषमें मिलेंगी? युधिष्ठिरका यह राजसूय केवल एक राज्य-वैभवका प्रदर्शन नहीं है, यह आनेवाले युगके निर्माणकी तैयारी है, अतीतके त्यागशील गौरवका स्मरण है, यह वर्तमान युगको उसका यथार्थ दर्शन करानेवाला दर्पण है। राजा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस जनसे शक्ति पाते हैं उस जनके प्रति सबसे ऊँचा सम्मान होना चाहिए; ब्राह्मण जिस जनके लिए त्याग करते हैं, जिस जनके लिए होम करते हैं, जिस जनके लिए मोक्ष-पथका चिन्तन करते हैं उस जनका सम्मान होना चाहिए। राज-शक्तियाँ नहीं रहेंगी, ऋत्विक् न रहेंगे, पर राज-शक्तियोंको, ऋत्विजोंको, वैश्योंको, शत्रुओंको जोड़नेवाला लोक-धर्म रहेगा, जिसके वेत्ता, कर्त्ता और स्वरूप हैं भगवान् श्रीकृष्ण। भीष्म पितामहने भगवान् कृष्णको लोक-वृद्ध कहा है, मैं कहूँगा वे साक्षात् लोक हैं :

"एष वै देवता: सर्वा देशकालधनादय: ।
अग्निराहुतयो मन्त्रा: सांख्ययोगश्च यत्पर: ।।
सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ।
देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ।।"

वे ही सम्पूर्ण देवता हैं, वे ही देश और काल हैं, वे ही लोककी सम्पत्ति हैं, वे ही अग्नि हैं, वे ही आहुति हैं, वे ही मन्त्र हैं, वे ही ज्ञान हैं, वे ही कर्म हैं। वे सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं, वे सब प्राणियोंको अपनेसे अन्य नहीं समझते, और इस ज्ञानको पाकर वे प्रसन्न हैं, जीवनमें पूर्ण हैं। उनको सम्मान देनेसे सम्मान अमर हो जायेगा, उनको युग-पुरुष स्वीकार करनेसे यह युग धन्य हो जायेगा, क्योंकि वह युग पापी होता है जो अपने अग्रपुरुषको उसकी जीवन-अवधिमें पहचान नहीं पाता। इस युगका बहुत बड़ा सौभाग्य है और इस देशके बहुत बड़े पुण्यका फल है कि युगकी प्रतिनिधि शक्तिको पहचाननेवाले भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर और युधिष्ठिर-जैसे धर्म-प्राण और युगवेत्ता पुरुष इस सभामें आज मौजूद हैं। युगका ध्वंस हो जायेगा, पर इस युग-द्वारा की गयी इस अग्र-पुरुष-पूजाके कारण उसकी महत्ताएँ आनेवाले युगोंमें लोगोंको प्रेरणा और विश्वास देंगी, जनके मानसका निर्माण करेंगी, और भारतकी आत्माका उन्नयन करेंगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिशुपाल तब भी गाली बकता रहा, क्योंकि गाली बकते-बकते उसे मरना था। उसकी मृत्यु गाली बककर ही लिखी थी। उसे द्वेषमें ही भगवान्‌को पाना था। जब उसकी गालियाँ सीमाका अतिक्रमण कर गयीं तो अत्यन्त निरुद्विग्न भावसे भगवान् श्रीकृष्णने उसका शिरश्छेद कर दिया, व्यक्तिगत वैरके कारण नहीं, लोक-मर्यादाकी रक्षाके विचारसे, सभाकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके विचारसे।

इस राजसूय यज्ञके बाद ही जुआ हुआ। पाण्डवोंका वनवास हुआ और वनवाससे लौटनेपर वचन-भंगके कारण कृष्णके लाख प्रयास करनेपर भी भारतका महासमर हुआ। उस महासमरमें भयंकर रक्तपात हुआ। भारतके असंख्य वीरोंकी आहुति हुई। पर उसी महासमरने उस युगके अग्रपुरुष कृष्णका अमर सन्देश दिया। उस सन्देशमें ही वह बलिदान सार्थक हुआ और यह प्रमाणित हुआ कि सत्यकी प्रतिष्ठा सस्ती नहीं होती, धर्मकी संस्थापना सस्ती नहीं होती, और युगका निर्माण सस्ता नहीं होता। कृष्णने अपने युगको नये युगमें ढाला। वही युग तपनेका, गलनेका और गलकर निखरा हुआ लोहा बननेका युग था। इसके विश्वकर्मा थे कृष्ण।

आज तो बहुतेरे शिशुपाल मिलेंगे जो कृष्णके पूर्ण व्यक्तित्वको समझ न सकनेके कारण उनके जीवनसे शिक्षा ग्रहण करनेमें अपनेको असमर्थ पायेंगे। पर कृष्ण-चरित्रको समझनेके लिए भीष्म, विदुर, युधिष्ठिर, सहदेवकी लोक-दृष्टि अपेक्षित है। क्योंकि भगवान् कृष्ण लोक-पुरुष हैं और पूर्णतया लोक-पुरुष हैं। जबतक कि लोक-भावनामें भावित होकर कोई उनके चरित्रका अध्ययन नहीं करता तबतक उसे उस चरित्रका सौन्दर्य एक अंशमें भी नहीं दिखायी पड़ सकता है। पुरुषोंमें अग्र वही होता है जो सब पुरुषोंके हृदयके साथ एकाकार होता है। निषेध, वर्जन, उपेक्षा, अभिमान, दर्प, राजमद, ज्ञानका अहंकार, लोक-हितको दुर्वह भार माननेकी चिन्तनशीलता—ये ही बातें अग्रपुरुष बननेमें बाधक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। भगवान् कृष्ण इन सबके ऊपर उठे हुए थे और इसीलिए वे न केवल अपने युगके बल्कि भारतके समग्र इतिहासमें सबसे बड़े अग्र-पुरुषके रूपमें जनता और साहित्य, दर्शन और इतिहास-द्वारा प्रतिष्ठित हैं। किसी शासनके स्वीकृत दलकी पूजा और स्मारकके निर्माणको उन्हें आवश्यकता नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संस्कृतिकी पाषाणी

सतना उतरकर यदि आप खजुराहोकी ओर बढ़ेंगे तो रास्तेमें आपको केन नदी मिलेगी—बड़े-बड़े पाषाण-खण्डोंके अन्तरालसे पिघल-पिघलकर बहती हुई, अनुरागी चट्टानोंका सात्त्विक प्रेम अपने हृदयमें भरती हुई, और खजुराहोके कलायात्रीके मनमें मध्ययुगीन संस्कृतिके सुन्दरतम शिवकी आकार-रेखाएँ खींचती हुई। इसी केनके रस-अवगाहमें पड़े हुए पत्थरोंसे खजुराहोके शिल्पीने कन्दर्पेश्वरकी रचना खड़ी की। उस रचनामें केनके द्वारा भारतके मध्य विन्ध्यका युग-सञ्चित स्नेह ही नहीं सना, भारतकी मध्ययुगीन कला-साधनाका उत्कर्ष भी ढलकर आया, विश्वका सम्मोहन सौन्दर्य अमृतत्वके लिए गतिशील बनकर आया, सृष्टिका रहस्य गर्भगृहके गह्वरमें नीलमणिका शिवलिङ्ग बनकर उद्‌भासित हुआ और विराट्‌की कल्पना मन्दिर बनकर साकार हुई। असीमको कलाकी सीमाओंमें बाँधनेका यह प्रयत्न बेजोड़ है। शैव दर्शनकी परम उपलब्धि आनन्दको विजड़ित करके जिस कलाकारने पत्थरमें ढाल दिया वह कलाकार न केवल अपनी रेखाओंका आचार्य था, बल्कि जीवनके व्यापक अर्थमें पहुँचा हुआ सिद्ध दार्शनिक भी था। वह कला-परम्पराकी कड़ी तो जोड़ ही रहा था, साथ ही मानव जीवनकी शिवतम, सुन्दरतम और शाश्वततम व्याख्या भी प्रस्तुत कर रहा था। वह अपने कठोर माध्यम-द्वारा संस्कृतिकी मृदुलतम रागिनी-को मुखरित करनेमें लगा हुआ था; वह कायिक वासनाको तीक्ष्णतम धार देकर शिवोन्मुख बनानेमें लगा था; वह उन्मुक्त आमोद-प्रमोदको, आखेट और मधुपानको, नृत्य और गीतको परम आनन्दकी झाईंके रूपमें प्रतिबिम्बित करनेमें लगा था; वह शक्तिके ऊर्जस्वी प्रवाहको शार्दूल प्रतिमाओंमें उभारनेमें लगा था; और वह शिवके शाश्वत संकल्पको आलोंमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिष्ठित देव-मूर्त्तियोंमें उतारनेमें लगा था।

इसलिए उस कलाकारकी सिद्धि पूर्व-मध्ययुगकी निखिल संस्कृतिकी सिद्धि है। पूर्व-मध्ययुगने, जो भारतीय दर्शनका स्वर्ण-युग था, प्राचीन चिन्तन-परम्परामें प्राण-संचार किया, पथभ्रष्टोंके लिए प्रशस्तसे-प्रशस्त और सुगमसे-सुगम पन्थ दिया और विद्याके विविध क्षेत्रोंके बीच समरसता प्रवाहित की। शंकरका अद्वैत, बौद्धोंका सहज, शैवोंकी प्रत्यभिज्ञा, वैष्णवोंकी रागानुगा भक्ति, ध्वनिवादियोंका रस, योगियोंका विन्दु, स्थपतियोंका मल-विमुक्त आमलक और शिल्पियोंकी दर्पणवती सुरसुन्दरी—ये एक-दूसरेसे विखरे हुए संकेत नहीं हैं, ये एक मननशील जातिके सुविचारित मन्थनके परिणाम हैं, इनके पीछे एक जागरूक और सचेत प्रयत्न है, विश्वको मनुष्यमें समाविष्ट पानेकी प्रवल आकांक्षा है और ऋजु-कुटिल नाना वर्त्मोंसे एक ही महान् अर्णवमें मिलनेका दुर्निवार संकल्प है। पृथक् विकसित दिखते हुए भी ये एक-दूसरेसे संग्रथित हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार खजुराहो-मन्दिरोंके भित्तिशिल्प वहुविध लगते हुए भी एक विशिष्ट प्रयोजनकी पूर्तिमें समान रूपसे उद्दिष्ट हैं।

उस युगको कुछ अर्द्धपठित लोग ह्रासोन्मुख कहते हैं, उनके लिए सातवीं सदी आयी नहीं कि भारतका ज्ञानसूर्य अस्ताचलको चला गया। वे वस्तुओंके भीतर पैठकर छानबीन करनेवाले प्रयत्नको ह्रासका लक्षण समझते हैं। वे यह नहीं समझते कि इस युगकी अन्तर्मुखीनता वाह्य दृष्टिसे भी उतनी ही सम्पन्न है। उसमें अन्तर इतना ही है कि वाह्य सौन्दर्यका प्रसार व्यंजक रूपमें ही उन्हें गृहीत है, व्यंग्य रूपमें नहीं। वे वाहरी रेखाओंसे उनके द्वारा प्रतीयमान वस्तुको व्यतिरिक्त भी देख सकते थे, परन्तु अन्तर और वाह्य—दोनों दृष्टियोंसे उन्होंने जगत्का साक्षात्कार किया था। इसका मूर्त्तिमान् प्रमाण है खजुराहोके मन्दिरकी स्थापत्य-रचना। कन्दर्पेश्वर मन्दिर, जिसे आजकल कन्दरिया महादेवका मन्दिर कहा जाता है, जितना लम्बा है लगभग उतना ही ऊँचा है। अर्द्धमण्डपके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तोरणद्वारसे उसका गर्भगृह जितना ही दूर और गहन दिखता है, मन्दिरके बाहरी कोनोंसे शिखर भी उतना ही ऊँचा और महान् लगता है। गर्भगृहके केन्द्रमें यदि उपास्य प्रतिमा है तो ठीक उसीकी सीधमें ऊपर शिखर-भागपर आमलक अर्थात् मनकी शुचिताके ऊपर अधिष्ठित अमृतघटको भेदकर ऊपर चली जानेवाली नोक है जो ससीम आत्माके विमोक्षका प्रतीक है।

मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि संस्कृति खण्डित नहीं होती, विशेष-रूपसे वह संस्कृति जो समग्र होती है, जो प्राणवान् होती है, और जो प्रक्रियाशील होती है। आप जब पत्थरमें दर्पण लिये हुए सुन्दरीका शिल्प देखेंगे तो आपको अभिनवगुप्तकी प्रत्यभिज्ञा या स्वरूपानुभूति याद आ जायेगी। आप जब कमलके पटलोंमें अधिष्ठित एक स्तरके बाद दूसरे स्तरका निर्माण देखेंगे तो आपको योग-साधनाके छह कमल याद आ जायेंगे। आप जब नीचेकी नृत्य-पट्टिकाओंसे लेकर ऊपरतक विद्या-धरोंकी परस्पर आबद्ध शिल्प-पंक्तिको एक नज़रमें देखेंगे तो आपको मानव उल्लासकी वे विविध प्रक्रियाएँ एक महान् आनन्दके लिए प्रेरित दिखेंगी जो निचलेसे-निचले स्तर और ऊँचेसे-ऊँचे स्तर तक एक ही तरह उन्मुक्त हैं, एक ही तरह गतिशील हैं और एक ही तरह व्यक्तिके बोधको विगलित करके समष्टिके साथ समरस हैं।

कन्दर्पेश्वर-मन्दिर खजुराहोकी स्थापत्यकलाका चरम उत्कर्ष है, क्योंकि इसमें समानुपात, सौष्ठव और गौरव तीनों हैं। इसकी शिखर-रचना अत्यन्त मनोहारी है। आप जब वेदीके दो पिछले कोनोंसे शिखरकी ओर दृष्टि डालते हैं तो आपको लगता है कि मन्दिर न जाने कितना ऊँचा है! कुल १०२ फ़ीटकी ऊँचाई एकाएक दृष्टिमें इतनी बड़ी हो जाती है कि इससे ऊँची चीज़की कल्पना ही थोड़ी देरके लिए नहीं हो सकती। इस ऊँचाईका प्रभाव लानेके लिए खजुराहोके स्थपतिने जो कला-विधि अपनायी है, वह अपूर्व है। बिचले शिखरके चारों ओर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीचेसे लेकर ऊपर तक जोड़नेकी कोशिश करते हुए छोटेसे-छोटे उरुशृङ्ग, जो छोटे पैमानेपर उसके प्रतिरूप हैं, उभारे गये हैं। इन उरुशृङ्गोंकी आरोही पंक्तियाँ, जो अमृतघटके पास पहुँचनेके लिए व्याकुल दिखती हैं, ऊँचाईका प्रभाव बढ़ा देती हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार एक अमलाशय योगीकी महत्ताको उसकी अमृत ज्योतिसे आकृष्ट, संतप्त, तृषित साधकोंकी पंक्ति बढ़ा देती है, मानो ऊपर जानेके लिए प्रयत्नशील विराट् मानवके सौ-सौ हाथ नीचेसे उन्नयनशील प्राणियोंके उद्धारके लिए नीचे झुके हों, वैसे ही यह महान् शिखर करुणाकी लम्बी बाँहोंको पसारकर बड़ा हो गया है।

मन्दिरके मुख्यतः तीन भाग हैं—सामनेसे खुलनेवाला अर्द्धमण्डप, उसके बाद सबसे पीछे गर्भगृह, गर्भगृहके चारों ओर परिक्रमा-पथ है और इस परिक्रमा-पथकी बाहरी दीवारोंपर लगभग वैसी ही शिल्प-रचना है जैसी मन्दिरकी बाहरी दीवारोंपर है। गर्भगृहकी ये बाहरी दीवारें मुख्य शिखरमें जाकर मिल जाती हैं। गर्भगृह और मण्डपके बीचमें अन्तराल है, वहाँसे खड़े होकर उपासक केन्द्रीय प्रतिमाके दर्शन पा सकता है। गर्भगृहकी भीतरी दीवारोंपर विराट् शून्यता है, चारों कोनोंमें चार दीपस्तम्भ और बीचमें शिवलिङ्ग—कभी यह शिवलिङ्ग नीलमका था। अन्तरालके सामनेवाले मण्डपमें नृत्य, गीत या अन्य सामूहिक स्तुतियोंके लिए जगह है। मण्डपके दोनों बाजुओंमें दो छज्जे हैं जो बाहरकी ओर खुलते हैं। ठीक इसी प्रकारके छज्जे गर्भगृहके तीन ओर हैं। मण्डपका चँदोवा जिन स्तम्भोंपर टिका है उनपर शालभञ्जिकाओंकी सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। ये शालभञ्जिकाएँ सफलता और उर्वरताके प्रतीकके रूपमें भरहुत-कालसे ही प्रयुक्त रही हैं, पर खजुराहो-युग तक पहुँचते-पहुँचते इनका सौष्ठव उत्कर्षपर पहुँच गया है। अर्द्धमण्डपकी लम्बाई आनेवाले उपासकोंकी लम्बी पंक्तिको मानो द्योतित करती है। मण्डपका चौकोरपन उपासक-समाजके सन्तुलनको द्योतित करता है तथा गर्भगृहका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गह्वर गुह्यतम तत्त्वकी गम्भीरताको प्रतिच्छायित करता है।

इस मन्दिरकी भित्तियोंपर तीन प्रकारकी शिल्प-रचनाएँ हैं—एक तो अलंकरण जो पुष्प, विशेष रूपसे कमल या अपराजिता, या ज्यामितिक आकृतिकी धारावाहिक पट्टिकाओंके रूपमें प्रस्तुत किया गया है; दूसरा आलोंमें देव-प्रतिमाओंका एक निश्चित क्रम-विन्यास; और तीसरा उन देव-प्रतिमाओंके परिपार्श्वमें और नीचे-ऊपर विभिन्न अभिप्रायोंको द्योतित करनेवाली शिल्पपंक्ति। पुष्प अलंकरणोंका मुख्य प्रयोजन उत्फुल्लताकी सन्तान-परम्पराका अभिवर्द्धन है। देव-प्रतिमाओंका विन्यास ध्यानको केन्द्रित करनेके लिए है तथा विविध अभिप्रायोंकी सार्थकता उस देव-प्रतिमा तक पहुँचनेमें जो मनकी अनेक स्थितियाँ अनुकूल या प्रतिकूल आती हैं उनको द्योतित करता है। जो लोग यह नहीं जानते कि भारतीय संस्कृतिकी दृष्टि जगत्के प्रातिभासिक सौन्दर्यको जगदीश्वरसे अपृथक् देखती है और इसीलिए वह मानुषिक प्रेम या उत्साहको निष्प्रयोजन न समझकर इनके उदात्तीकरणमें ही देव-शक्तियोंका उदय पाती है, उनके लिए यह मानी हुई बात है कि खजुराहोके अभिप्राय कामुकताके कलुषसे प्रेरित लगेंगे। मैं इसलिए पहले इसपर विशेष बल देना चाहता हूँ कि खजुराहोके कलाकारके लिए धर्म कवच नहीं है। इसीलिए वह एकांगी शुचितापर विश्वास नहीं करता। वह जन्म-जन्मान्तरकी अशुचिताको प्रक्षालित करनेकी क्षमता रखनेवाली अपरिसीम शुचितामें स्नान कर चुका है। उसके लिए कोई भी पार्थिव आनन्द अमंगल नहीं है, कोई भी पार्थिव प्रक्रिया अशिव नहीं है, कोई भी पार्थिव चेष्टा अप्रिय नहीं है। इन सबमें वह शिवको, मंगलको और आनन्दको ढूंढ़ निकालता है। खजुराहोके मन्दिर उस परम-शिव और परम-आनन्दकी खोजकी कहानी दूसरे माध्यमसे दुहराते हैं जिसे कालिदासने काव्यके और अभिनवगुप्तने दर्शनके माध्यम-से निबद्ध किया था। उनका मार्ग पार्थिव सौन्दर्यसे विभ्रान्त या उन्मथित होनेका नहीं है, बल्कि पार्थिव सौन्दर्यको मथकर, कन्दर्पके प्रत्येक शर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्धानको साधकर अपार्थिव और शाश्वत सौन्दर्यकी प्राप्ति, या दूसरे शब्दोंमें कन्दर्पेश्वरसे तादात्म्यकी प्राप्ति, ही उस मार्गका गन्तव्य है। वह श्रेयको प्रेयसे अविभक्त देखनेका अभ्यासी है। अलक्तक लगानेवाली सुन्दरी, अपनी मुक्त वेणीके मौक्तिकोंसे हंसोंको लुभानेवाली अप्सरा, दर्पणमें अपने स्वरूपकी पहचान करनेवाली जगन्माताकी दूती, अपने उज्जृम्भणसे जागरणका संकेत देनेवाली रूपसी, या वंशीके स्वरपर अनाहत नाद छेड़नेवाली प्रेम-प्रतिमाको अंकित करते समय वह एक क्षणके लिए भी यह नहीं भूलता कि ये सभी साधन हैं, साध्य नहीं। उसकी अर्चनाका केन्द्र-विन्दु गर्भगृहमें निराकुल अकेली प्रतिमा है जो रूपके इन आकर्षणोंसे परे है, जो इन आकर्षणोंके द्वारा अपनी ही प्रभा छिटकाती है।

खजुराहोके इन मन्दिरोंको जो देखने आये और इनसे कुछ पाने आये वह कमसे-कम अपने मनको खजुराहोके कलाकारोंकी भावभूमि तक पहुँचाके जरूर आये, नहीं तो वही पुरानी कहानी है जो यहाँ कितनी विचित्रता और विलक्षणताके साथ दुहरायी गयी है। उसे तब भारतीय संस्कृतिका वह मूल स्वर सुननेको नहीं मिलेगा जो सांसारिक जीवनमें रमाकर भी उसके ऊपर मनुष्यको ऊपर उठाने और विश्वके साथ एक-स्वर होनेकी प्रेरणा देता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नया दौर

मैं पहले ही वता दूँ कि नया दौरसे आप यह न समझें कि मैं 'नया दौर' फ़िल्मके बारेमें कुछ लिखने जा रहा हूँ, वैसे फ़िल्म भी वड़ी लाजवाव है और जिस नये दौरके बारेमें मैं कहने जा रहा हूँ उसीकी तरह बड़ी ज़ोरदार और ज़िन्दगीमें गीतोंका तूफ़ान भरनेवाली है। नये दौरसे मेरा मतलब हिन्दुस्तानकी उस महान् रक्तहीन जन-क्रान्तिसे है जिसकी प्रशंसा करते-करते हमारे जन-नायकोंके तालू सूख जाते हैं और उनका बयान छापते-छापते अखबारोंकी रोशनाई चुक जाती है। सुना है, पता नहीं सच है या नहीं, कि हिन्दुस्तानमें जो फ़ोटोग्राफ़ीके फ़िल्मोंकी कमी इधर महसूस होने लगी है उसका भी कारण यही है कि इस महान् मानवीय अभियान-का चित्र उतारते-उतारते और उन्हें ठौर-कुठौर सभी जगह सजाते-सजाते फ़िल्मोंका स्टॉक ही रीत चला है। हमारे नेताओंको अफ़सोस यही है, और उनका अफ़सोस सही भी है, कि इस क्रान्तिके प्रति चारों ओरसे उत्साह दिखलाये गये हैं—देश-विदेशमें इसकी स्तुतिं हुई, इसके कारण कर्मचारियोंमें आमूल परिवर्तन हो गया, यहाँतक कि जन-जीवनको प्रति-बिम्वित करनेवाले लोक-गीतोंमें भी इस क्रान्तिको भरनेके लिए गाँव-गाँव अकुलाहट होने लगी—पर साहित्यकार न चेता, उसके कानोंमें जूँ तक नहीं रेंगी, उसकी आँखें खुलकर भी न खुलीं। इतना शोर-गुल, इतना प्रदर्शन और इतना तप उनके लेखे व्यर्थ गये। मैं साहित्यकार पूरी तरह तो नहीं हूँ, पर कभी-कभी भूले-भटके साहित्यकी नदीमें पाँव पखारनेवालोंमें जरूर हूँ। इसलिए वहुत दिनोंसे मैं इस क्रान्तिके बारेमें कुछ लिखनेकी सोच रहा था। प्रेरणा लेनेके लिए अधिक प्रशंसित और अपेक्षाकृत उपेक्षित दोनों प्रकारके क्षेत्रोंमें इस क्रान्तिका अभियान देखा और इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रान्तिके स्रष्टाओंसे रस्मी और ग़ैर-रस्मी दोनों तरहकी बातचीत की, और चूँकि मैं थोड़ा-बहुत लोक-साहित्यमें भी रुचि लेता हूँ, मुझे नये दौरमें लिखे हुए नये लोक-गीतोंका रेला भी हर जगह झेलना पड़ा। आँकड़ोंकी भीड़ मिली और उन आँकड़ोंके बाद भी वैज्ञानिक ढंगसे मूल्यांकन करनेका मौक़ा मिला। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नया दौर बड़ा नशीला और पुरअसर है। सबसे अधिक तन-मन-वचनपर एक-साथ छानेवाला दौर यही है और मैंने बड़ी कॉन्फ्रेन्सों और मीटिंगोंमें इसके नशेमें जब लोगोंको झूमते देखा तो मुझे लगा कि ज़रूर इसके पीछे कोई बात होगी। इतना आत्म-सम्मोहन या तो मैंने कालिदासके 'मेघदूत'में पढ़ा-भर था—जब कालिदासका यक्ष अपनी प्रियतमाकी संगीत-साधनाका वर्णन करता है तो कहता है कि मन बहलानेके लिए जब वह वीणापर गाने लगती है तो तन्मयताकी अवस्थामें उसे अपनी ही रची हुई मूर्छना बार-बार भूल जाती है—या अब यहाँ तो प्रत्यक्ष देखा कि वह इस मूर्छनाका रचयिता जब अपना राग अलापने बैठता है तो ऐसा विभोर हो जाता है कि अपनी ही लयदारी उसे बार-बार भूल जाती है और फिर नये सिरेसे उसी कड़ीको शुरू करने लगता है। जब-जब वह भूलता है तब-तब उसे अपनी टेक हिन्दुस्तानकी आज़ादी याद आ जाती है। हिन्दुस्तानकी आज़ादी इन नये दौरवालोंके लिए एक ऐसी चीज़ है जो कभी भी पुरानी नहीं हो सकती और उनकी कोई भी शाक-सब्ज़ी या दाल बिना आज़ादीका बघार पाये सोंधी नहीं होती। बात किसी विषयपर शुरू होगी, लेकिन बीच-बीचमें आज़ादीकी याद जबतक उसे न सींचे तबतक वह बात पल्लवित नहीं हो पाती। एक दूसरा बार-बार दोहराया जानेवाला अन्तरा है बापूका सपना और हज़ारों जीपों और उनके पीछे उमड़ती हुई धूलकी उत्ताल तरंगें इसी सपनेकी मंज़िलकी राह बताती रही हैं। सपना बड़ा मीठा है, इस सपनेको छेड़नेवाली तान जिसमें एक बी० डी० ओ० साहबसे लेकर बी० एल० डब्ल्यू० साहब तक एक ओर और डे साहबसे लेकर डिस्ट्रिक्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्लानिंग अफ़सर साहब तक दूसरी ओर एक-ताल होकर निमग्न हैं।

अब यह दूसरी बात है कि हिन्दुस्तानकी आबोहवा सपनोंके लिए अनुकूल होते हुए भी सपनोंकी रागदारीके लिए अनुकूल न हो और इसके कारण लोग सपनेमें रस ले भी लें, सपनोंकी तानमें उतना रस न ले पायें। शायद यही कारण है कि इस देशका साहित्यकार ऐसा विराट् स्वप्नदर्शी होकर भी इन सपनोंकी इन नयी तानोंके लिए बहरा हो गया है। निश्चय है कि यदि सपने सच हैं—और सपने सच हैं इसमें सन्देहकी गुंजाइश ही नहीं है—तो इन सपनोंके राग भी झूठ नहीं हो सकते। साहित्यकारका सत्य यदि उसे सत्य बना रहना है तो इस नये सत्यके प्रति समर्पण करके रहे, नहीं तो इस तिनकेकी तरह इस बवण्डरमें जाने किधर जा लगेगा। सो मैं एक दिन इस सत्यके प्रति इसी प्रणत भावसे एक ऐसे देहातमें पहुँचा जहाँ इस क्रान्तिका सन्देश अभी किंचित् शुरू हुआ था। पर जिस रिश्तेदारके यहाँ ठहरा वहींपर, सौभाग्यवश उस क्षेत्रके वी० एल० डब्ल्यू० साहब (अर्थात् शुद्ध हिन्दुस्तानके ग्रामस्तरका कार्यकर्त्ता और योजना-विभागकी हिन्दुस्तानीमें ग्राम-सेवक, पर गाँववालों की सूचीमें डब्ल्यू० साहब) भी डेरा डाले हुए थे। डब्ल्यू० साहब या डबल साहब; दारोग़ा, क़ानूनगो, डाक्टर साहब या और दूसरे देहाती हाकिम तो इकहरे साहब हैं : वे केवल लेते हैं देते नहीं हैं, पर डब्ल्यू० साहब दोहरे साहब हैं : वे देते भी हैं लेते भी हैं। देते हैं सीख जिसे उन्होंने गाइडेन्स कहना सीखा है, और लेते हैं सहयोगका प्रतिज्ञापत्र। इन डब्ल्यू० साहबके अयाचित साक्षात्कारसे मैं कृतकृत्य हो गया। बातचीतके दौरमें मैंने उनसे पूछा कि आजकल आप क्या कर रहे हैं। उन्होंने बतलाया कि जापानके तरीक़ेकी खेती गाँव-गाँव करा रहे हैं। पहले मैंने उनको सिरसे पैर तक देखा। शार्क-स्किनवाली बुश-शर्टपर मक्खन-जीनकी पैन्ट, उसपर रंगीन साँभरका सैण्ड्ल और धानकी रोपाईका काम! हिन्दुस्तानकी इस प्रगतिपर मुग्ध होकर रह गया कि हिन्दुस्तानके किसानोंके ये ठाठ भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखनेको मिले, कि अब कीच-काँदो नहीं लगता, यहाँतक कि कोई छिटका भी नहीं पड़ पाता, और कि लक़दक़ कपड़ोंमें बिना बरसाती या छातेके वर्षाके मौसममें भी धानकी रोपनी की जा सकती है ! मैंने उत्सुक होकर पूछा कि एक बीघा खेतमें जापानी तरीक़ेके अनुसार कितना बिस्सा (वहाँका स्थानीय २० सेरका माप) धानकी बेंहन डालनी होती है ? उन्होंने तपाकसे जवाब दिया कि हम लोगोंका हिसाब बीघा-बिस्सामें नहीं चलता, मन और एकड़में चलता है। मैंने कहा : बड़ी कृपा है कि अभी किलोमीटर और किलोग्राममें नहीं शुरू हुआ। उन्हें लगा कि मैं उनके प्रगतिशील ज्ञानके बारेमें शंका कर रहा हूँ। उन्होंने कहा : मेरे पास नये मापके बारेमें सरकारी सर्कुलर आ चुका है पर मैं अभी उसका इस्तेमाल इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि लोग बड़े जाहिल हैं। वैसे मैं उसे भी अच्छी तरह सीख चुका हूँ। मैंने पूछा : कितने एकड़ खेतपर आपका मार्ग-प्रदर्शन सफल हुआ है। उन्होंने बतलाया कि अभी उन्होंने २-३ गाँवोंमें एकड़के १००वें हिस्सेपर केवल प्रदर्शनका कार्य करवाया है और चूँकि अभी जापानी-पद्धतिपर बने हुए फ़िल्म यहाँ नहीं आये इसलिए आगेका काम रुका हुआ है। गाँवमें लोग अब बिना फ़िल्म देखे किसी कामके लिए आगे नहीं बढ़ते। मैंने पूछा : आपने कोई लोक-नृत्य इस विषयपर नहीं बनवाया ? उन्होंने कहा कि पार्टी इस समय दूसरे ज़िलेमें फँसी हुई है और जापानी-खेतीपर आल्हा गानेवाला भी हमारा इस समय दूसरे इलाक़ेमें गया हुआ है। मुझे लगा बेचारे इस समय कितने साधनहीन हैं ! न नाच है, न फ़िल्म है, न अल्हइत है, अकेला-दम बेचारा क्या करे ? ग्राम-सेवाका कार्य कुछ हँसी-खेल तो नहीं। गाँववालोंको सवेरे उठकर डेण्टल क्रीम कैसे लगायी जाती है यह प्रदर्शन करके बतलाना है, किस ढंगसे कपड़े पहने जाते हैं और कैसे प्याले-तश्तरी और चायदानी-दूधदानी के बीच रंगका मेल रखा जाता है, कैसे हाथ उठा-उठाकर स्वर चढ़ा-चढ़ाकर अँग्रेज़ीके शब्दोंकी गहराईका पुट देकर बातचीत की जाती है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और स्त्रियोंको बिना धूएँवाले चूल्होंपर कैसे रसोई बनानी चाहिए—इन सब बातोंको सिखलानेमें ही बेचारेका सुबहसे लेकर शाम तकका वक़्त गुज़र जाता है। गाँवकी जहालतके बीच इसके सपने बिलखते रहते हैं और यह इस नीरस ज़िन्दगीसे मजबूर है, बस हर हफ़्ते बी० डी० ओ० साहब की हाज़िरीमें बैठनेके बहाने वहींपर जंगलमें मंगल मना ले और अपने साथी ग्राम-सेवकों और ग्राम-सेविकाओंके अनुभवोंके परस्पर आदान-प्रदानसे लाभ उठा ले! बड़े तप और संयमका काम है पुरइनकी तरह गाँवके सरोवरको एकदम निर्लिप्त हलराते रहना, गाँवके समूचे अस्तित्व को निकालके अपनी हरियालीका गर्व ऊँचे रखना योग-साधना नहीं तो क्या है? गाँवकी जानकारीकी एकाध बूँद उड़के आयीं भी तो वे तुरत ढुलक जाती हैं। इसलिए ग्राम-स्तरका होते हुए भी वह गाँवसे ऊपर है, ग्रामसे बाहर है और कार्यकर्त्ता होते हुए भी वह निश्चल है और कर्म-अकर्मसे परे है।

मन इस साधनासे भर आया। लगता है ग्राम-सेवाकी साधना ग्राम-सेवकके नूरमें झलक रही है। अब यदि कोई उससे गाँवका नक़्शा मनमें न खींचे तो यह उसकी बुद्धिका ही तो दोष होगा। हमारी परम्परामें भगवान्‌से अधिक भक्तका महत्त्व कहा गया है और इस दृष्टिसे ग्रामसे अधिक ग्राम-सेवकका महत्त्व होना चाहिए, और यदि है तो इसकी परम्परा का ही तो निर्वाह हो रहा है। गाँवका वातावरण जिसके योजना-संकीर्त्तनसे मुखरित हो और जिसके उज्ज्वल परिधानसे आलोकित हो, उस व्यक्तिसे अधिक उस व्यक्तिमें दीक्षा देनेवाली योजनामें किसीकी श्रद्धा न उमड़े तो यह निश्चय ही उसके अभारतीय होनेका प्रमाण है। आरामको हराम करके जिस योजनाने चौबीसों घण्टे उपदेशका और क़िस्म-क़िस्मके नक़्शोंके आलेखनका चर्खा लगा रखा है वह योजना अवश्य ही बहुत बड़ी योजना होगी। इन नक़्शोंके अम्बार लगते चले जा रहे हैं, और कार्यकी तत्परता भी ऐसी है कि किसी भी सूचनाके लिए पिछले नक़्शोंके अम्बारमें-से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ढूँढ़कर निकालनेमें जो समय लगेगा उसकी बचतके लिए फिरसे नया नक़्शा मँगानेकी आवश्यकता समझी जाती है। यहाँतक कि विशेष सन्देश-वाहक भेजे जाते हैं, जीप दौड़ायी जाती है, ट्रंक किये जाते हैं, और कार्यमें शीघ्रताका ध्यान इतना है कि यदि पिछली भेजी गयी सूचनाकी प्रतिलिपि नहीं भी है तो अविलम्ब नयी सूचना उर्वर कल्पनाके बलपर प्रस्तुत कर दी जाती है। इसके अलावा सालमें न जाने कितने 'सप्ताह' हैं : कभी सहकारिता सप्ताह है, कभी शिक्षा सप्ताह है, कभी अछूतोद्धार सप्ताह! और न जाने कितने पखवारे होते हैं : यह सफ़ाई पखवारा है, यह श्रमदान पखवारा है, यह जापानी-खेती पखवारा है! और हरएक पर अफ़सरके दौड़ेमें जो युवक-मंगलदलकी परेड या बिरहा-गायकों या सोहर-गायिकाओंके दंगल हैं उनका आयोजन तो घेलुआमें समझिए।

सचमुच योजना बनानेवालोंकी कल्पना बड़ी उदात्त है कि ७ वर्ष बीत चुके इस कल्पनाका विस्तार अनुदिन बढ़ रहा है और ज़मीनकी कौन कहे क्षितिजके भी वह पार चली गयी है! सामुदायिक भवनके निर्माणके लिए जो इस कल्पनाने श्रमदान किया है वह इसकी सुकुमारताको देखते हुए बहुत बड़े अचम्भेकी बात है। इस भवनका ही यह प्रभाव है कि समूचे गाँवकी रोशनी सुधा-धौत विकास-कार्यालयके भवनमें आकर केन्द्रित हो गयी है और इस कार्यालयके भीतरका तम गाँवने ले लिया है। प्रकाश और तमके इस विनिमयकी यह दर बड़ी सस्ती है। गाँव-वालोंको थोड़ा-सा प्रकाश देकर उन्हें ढेर-सा तम देनेकी यह उदारता नये दौरकी देन है। आप जबतक उस साठ मीलकी रफ़्तारसे जानेवाली जीप पर सवार रहेंगे तबतक आपको पेड़-पल्लव, ज़मीन-मकान भागते हुए नज़र आयेंगे और जिस क्षण आप उतरकर ज़मीनपर आयेंगे तो लगेगा कि केवल मोटर-भर चली है या उस मोटरके पीछे दौड़नेवाली उसकी धूल, या फिर उस मोटरके पहियोंने जो सपनोंकी लीक छोड़ दी हैं वह बदलती चली है। लगता यह है कि जो गाँव-गाँव ग्राम-सेवकके रूपमें एक-एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्पण गाँवका मुखड़ा देखनेके लिए सरकारने दे रखा है वह दर्पण ही घूम रहा है जिसके भीतर अचल और निश्चेष्ट गाँव भी सचल दिखायी पड़ रहे हैं। सो इस नये दौरके दो पहलू हैं : एक जो दर्पणके भीतर है और दूसरा जो दर्पणके वाहर है। गाँवकी गतिशील निराशा दर्पणमें नहीं आती और दर्पणकी चंचल आशा गाँवमें नहीं आ पाती। नया दौर आया है; उसका अभिनन्दन है, क्योंकि उसने नये आशा-कुसुम खिलाये हैं। कल्पना और साहित्यकी दृष्टिसे और भी विशेष अभिनन्दन है, क्योंकि वह

"एहि आसा अटक्यौ रह्यौ अलि गुलाबके मूल।
ऐहैं बहुरि वसन्त ऋतु इन डारन वे फूल॥"

में रस लेनेवाला है और नया दौर वसन्त हो न हो, वसन्त-राग तो है और यदि श्रुतरागिनीकी अपेक्षा अश्रुतरागिनीका माधुर्य साहित्यकारके लिए अधिक है तो नये दौरका भी साहित्यकारके लिए मूल्य अधिक होना चाहिए। और मैं इसी भावसे इसका शत-शत वार अभिनन्दन करता हूँ। इससे अधिक अभिनन्दन करता हूँ उस वलाका-पंक्तिका जो कालिदासकी

"गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
प्रेक्षिष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं वलाकाः।"

वलाका-पंक्तिकी ही तरह इस नयनसुभग मेघके पीछे-पीछे इस कृतज्ञता में उड़ती चलती है कि उसने इनके जीवनको सफल बनाया है। सो मेघकी चहेती इन बगुलियोंका स्वागत है, उस मेघदूतका स्वागत है जो हमारे जनपदोंकी सुरभिका आस्वादन करता हुआ कैलास चला जायेगा और कैलासकी गोदमें बसी हुई अलकामें विलासी यक्षका सन्देश इन्द्रनीलके मन्दिरमें झरोखोंसे झाँककर सुना देगा। भारतके कल्पना-सम्राट् और भाग्यविधाताके सन्देशवाही नये दौर उड़ते हुए जाओ, घुमड़ते हुए जाओ, रस लेते हुए जाओ, रस केवल पात्रमें भरते हुए जाओ, भारतकी भाग्य-लक्ष्मी इस सन्देशेके लिए तरस रही है, जल्दी सन्देशा पहुँचाओ! मैं भारतका एक अकिंचन साहित्यकार हूँ, मेरा भी प्रणाम कहना और लौटकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि साबित आ सको तो उस यक्षके पास जाकर यह बतला देना कि रास्तेमें एक आदमी ऐसा भी मिला जो मेरे पीछे-पीछे दौड़ा नहीं, मात्र मुझसे प्रणाम कहनेको कहा और आप तक यह सन्देशा पहुँचानेको कहा कि आपकी कल्पना-सृष्टिका रसास्वाद करनेवाले साहित्यकार अभी जीवित हैं। जीवित हैं, यह आपकी कृपा नहीं, आपके इस नये दौरकी कृपा है जिसने अपने इस आसमानी कलेवरको छविकी वृष्टिसे उन्हें जिला रखा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल

सचमुच जिसे संयोग कहते हैं वह बड़ा विचित्र होता है। इसी संयोगके नाते सच कभी-कभी झूठसे भी अधिक अजनबी बनकर हमारे सामने आ जाता है। राजाजीने जब अंग्रेज़ीके हिमायतियोंकी कॉन्फ्रेन्स अंग्रेज़ोंकी पहली राजधानी कलकत्तामें बुलायी तो उन्हें क्या पता था कि उसी समय उसी नगरमें उन्माद रोगके विशेषज्ञोंकी भी कॉन्फ्रेन्स होगी और यदि होगी भी तो दोनोंकी रिपोर्टें एक-साथ अखबारोंमें छपेंगी। एकमें यह कहा जायेगा कि अंग्रेज़ीको भारतकी राजभाषा माननेवाले लोग पागल हैं और दूसरेमें इसपर दुःख प्रकट किया जायेगा कि देशकी बढ़ती हुई नये पागलोंकी संख्याके अनुपातमें उनकी चिकित्साकी व्यवस्था नहीं है। इसी तरह, पता नहीं हैदराबादमें पहले मिनिस्टरोंके बँगले बने या उसी जगह पहले प्रभुत्व-ज्वर अस्पताल खुला, पर दोनोंका सुखद संयोग सच होते हुए भी नानीकी कहानीकी तरह दिलचस्प है। मैंने जब यह साइनबोर्ड पढ़ा तो मुझे लगा कि भारत-भरमें यदि कहीं सूझ-बूझके लोग मन्त्री-पदपर हैं तो आन्ध्रमें, उन्हें अपने रोगकी भी सही परख है और उस रोगसे मुक्ति पानेके लिए उन्हें ऐसी चिन्ता है कि बिलकुल अपने ही मुहल्लेमें उन्होंने रोगका अस्पताल खोल रखा है। वैसे उत्तर-प्रदेशमें भी आध्यात्मिक स्तरपर इस ज्वरकी चिकित्साके लिए जो नयी बस्ती मन्त्रियोंके पड़ोसमें बसायी गयी है उसका नामकरण है गौतमपल्ली। गौतम बुद्ध, सुना जाता है, बहुत बड़े भिषग् हुए हैं, जिन्होंने अपना जीवन ही भव-रोगके रोगियोंकी परिचर्यामें बिताया है। उत्तर-प्रदेशमें शायद भौतिक स्तरके रोग नहीं होते—भगवान्के अवतारोंका प्रदेश है, यहाँ रोग भी ऊँचे क़िस्मके होते हैं!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैंने प्रभुत्व-ज्वर अस्पतालके भीतर जाकर पता लगानेकी कोशिश की तो पता चला कि यहाँ संक्रामक ज्वरोंकी चिकित्सा की जाती है और रोगका प्रसार रोकनेके लिए रोगीको चिकित्सालयमें एक तरहसे रहनेके लिए विवश कर दिया जाता है। सही बात है, प्रभुत्वका ज्वर बहुत संक्रामक होता है और संक्रमणमें वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है। मन्त्रीसे अधिक ज्वर उनके निजी सहायकको, उनके निजी सहायकसे अधिक ज्वर उनके चपरासीको, उनके चपरासीसे अधिक तीव्र ज्वर उनके फ़र्राशको। इसी तरह सीढ़ीपर-सीढ़ी नीचे उतरते जाइए : पहले साहबको अगर १० और ११के बीचसे ज्वर चढ़ता है तो बड़े बाबूको १० बजेसे ५॥ बजेतक ज्वर चढ़ा रहता है। ऑफ़िसके मेरे एक मित्रको यह ज्वर कभी-कभी २४ घण्टे चढ़ा रहता था और वे अपनी पत्नीको भी, जब वे एकाध दिनके लिए अपने मायके जानेके लिए कहतीं तो निर्दिष्ट प्रकारके आवेदन-पत्रपर छुट्टीके अधिकारके ठीक-ठीक विवरण और प्रमाणके साथ प्रार्थनाके लिए कहते। उनकी दफ़्तरी भाषाको बेचारी पत्नी क्या समझ पातीं, हाँ दो-तीन बार इस प्रकारके व्यवहारसे आतंकित होकर उन्होंने मुझ-जैसे दो-चार अपने पतिके हितैषियोंसे एकान्तमें सलाह ज़रूर ली कि कहीं कुछ हो तो नहीं गया है उन्हें, सुबह-शाम ब्राह्मी देनेकी आवश्यकता तो नहीं है ? मैंने उन्हें तब बताया था कि यह एक क़िस्मका प्रभुत्व-ज्वर है जिसकी दवा सिवाय आपके प्रभुत्वके और कुछ नहीं हो सकती ! मेरी नेक सलाह मानकर उन्होंने एक-दो बार ऑडिटर पतिको कसा तो उनकी हेकड़ी भूल गयी और वे अपना खुमार अपने सहकारियोंपर ही अधिक उतारने लगे।

हिन्दुस्तानमें प्रभुत्व-ज्वर बड़ी तेज़ीसे फैल रहा है। हो सकता है कुछ दक्षिण-पवनका प्रभाव हो, या जरसी संस्कृतिके स्तन्यपानका स्वाभाविक परिणाम हो, या नयी स्वाधीनताके साथ 'क्रॉस' करके तैयार की गयी पुरानी नौकरशाहीकी क़लमके मदमाते फलोंका आलस लानेवाला नशा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो। जो कुछ भी कारण हो प्रभुत्व-ज्वर बढ़तीपर है। बड़ी मुश्किल तो यह है कि जिसे एक बार यह ज्वर हो जाये, फिर वह बिलकुल बेकार-सा हो जाता है। न केवल वह ज़िन्दगीके भाँति-भाँतिके रंगोंके प्रति अन्धा और सरगमके विविध स्वरोंके प्रति बहरा हो जाता है, बल्कि हर एक मानेमें वह गतिहीन, भावहीन और प्राणहीन हो जाता है; सिवाय इसके कि उसकी चेतना ज्वरके प्रभावमें जिस नये संसारकी रचना कर लेती है उस संसारको और विस्तार देनेमें वह और जागरूक हो जाता है। उस संसारमें केवल एक ही सीमित सत्य है : शक्तिको आत्म-समर्पणसे पाना; उस संसारकी एक ही क्रिया है : क्रियाका निषेध। जितना ही जो क्रियासे बचता है उतना ही वह अधिक सक्रिय कहा जाता है, और जितना ही जो काम बढ़ाता जाता है उतना ही अधिक कामचोर वह गिना जाता है। उस संसारमें एक ही सुख है : अपने अधीनस्थ लोगोंके प्राणसूत्र उँगलियोंमें बाँध रखनेकी तृप्ति। उस संसारमें एक ही स्थिति है : कुरसी, और एक ही गति है : मेज़। कुरसीकी सलामत और मेज़परसे काग़ज़ोंका हटाना, इसी मनौतीमें प्रभुत्व-ज्वरके रोगीकी उम्र सिरा जाती है। उस संसारमें मंज़िलें तो अनेक हैं, पर रास्ता एक भी नहीं। कैसे लोग इन मंज़िलोंपर पहुँचते हैं, यही एक रहस्य है। कौन-सी कमान, कौन-सी रेशम डोरी, कौन-सा रज्जुसर्प, कौन-सी वल्लाकुदान, एकदम मंज़िलपर पहुँचा देती है—इसका पता न तो मंज़िलपर पहुँचनेवालोंको होता है और न मंज़िलके लिए कोशिश करनेवालोंको। यहाँकी भाषामें केवल एक ही पुरुष है, एक ही वचन है, और एक ही लिंग। पुरुष केवल अन्य; लिंग केवल, न स्त्री न पुरुष, सामान्य; और वचन न एक न द्वि, केवल बहु। इस संसारमें उत्तम पुरुष, एक वचन और पुंलिंगके व्यवहारके ऊपर प्रतिबन्ध है; इसीलिए दर्द कहीं होता है पीर कहीं और होती है, ग़लती कोई करता है सज़ा कोई और पाता है, काम कोई करता है श्रेय कोई और पाता है। इस संसारमें सबसे महँगा है अहंकार और सबसे सस्ती सद्भावना। एक तरहसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहा जाये तो इस संसारका हर एक रास्ता सद्भावनाओंकी कंकरीटकी कुटाईसे वना है। इस संसारमें आदमी अपना सब-कुछ देकर केवल भार लेता है, पर इस भारसे उसे ऐसा मोह होता है कि इसे उतारनेमें जबतक कि और भी वज़नदार भार उसके कन्धेपर पहलेसे रख न दिया जाये, उसे प्राणान्तक कष्ट होता है। ऐसे विचित्र संसारमें रहते-रहते मनुष्य पराया हो ही जाता है। कहनेको उसको दृष्टि वस्तुनिष्ठ हो जाती है पर सही बात है कि उसमें आत्मा ही नहीं रहती, आत्मनिष्ठता कहाँसे आयेगी। जितना ही अधिक जो पराया होता है उतना ही अधिक उसके दूसरे साथियोंको उसके भाग्यसे स्पृहा होती है। यह ज़रूर है कि कविकी दुनिया, प्रेमीकी दुनिया, साधककी दुनिया और पागलकी दुनियासे इस दुनियाका फैलाव अधिक जीवन-व्यापी होता है, इसीलिए वे सभी क्षणिक मूल्य रखती हैं, जब कि इस दुनियाका शाश्वत मूल्य है। साहित्य-शास्त्रकी भाषामें कहें तो 'क्लासिक' मूल्य है।

पर केवल संसार-रचना ही इस ज्वरका कार्य नहीं है। यह ज्वर मनमें सक्रिय होनेके पहले तन और वचनमें सक्रिय होता है। सबसे पहले बोली बदलती है। जब मरहठोंने उत्तर भारतपर आधिपत्य जमाया तो उत्तर भारतके प्रभुताग्रस्तोंकी बोली बदली और तभी शायद यह मुहावरा हिन्दीमें आया कि 'देशी कौआ मरहठी बोल।' हिन्दुस्तानमें तो यह बोली बिलकुल बदल गयी है और प्रभुताका ज्वर जिनके ऊपर बहुत अधिक चढ़ा हुआ है वे यह भूल गये हैं कि उनकी बोली कभी कुछ दूसरी थी और अभी भी ज्वरमुक्तोंकी बोली दूसरी ही है। उन्हें यह आशंका हो गयी है कि बोली तजते ही उनकी रोगीकी सत्ता समाप्त हो जायेगी। देशी बोलीमें चाय पीना भी उनके लिए दुश्वार है। उनके लड़के देशी बोलीके मुक्त वातावरणसे दूर रखे जाते हैं, ताकि घरमें विरस वातावरण न उपस्थित हो। मेरे एक रोगी मित्रको हिन्दीसे सबसे बड़ी शिकायत यही थी कि और तो ठीक है पर 'ऐट-होम' का निमन्त्रण हिन्दीमें कैसे छपवाया जा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सकता है। अंग्रेज़ी मुहावरेके विना थोड़ी देरके लिए आप चाय भी पी लें, पर डिनर तो विलकुल वदमज़ा हो जाता है। मैं ऐसे लोगोंको क्या जवाब दूँ। हाँ, मनमें यह जरूर समझता हूँ कि यदि हमें इन रोगियोंसे अधिक इनके रोगोंकी रक्षा करनी है तो इनके 'डिनर' को वदमज़ा नहीं होने देना है। डिनरका मज़ा वरक़रार रहे, वोलियाँ तो वनती-विगड़ती रहती ही हैं! नये भाषा-विज्ञानका तो यह पहला उसूल है कि भाषा मनुष्यके वाग्यन्त्रपर आरोपित व्यापार है, उसका सहजात व्यापार नहीं। इसीलिए इस ज्वरका रोगी चूँकि एक वहुत सीमित दायरेमें रहता है और उसके आँख-कान धीरे-धीरे एक ऐसी अजनवी भाषामें सधते चले जाते हैं कि इस भाषाके वाहरसे संसारका भी अस्तित्व नहीं दिखायी देता, वह धीरे-धीरे इस आत्मसम्मोहनका शिकार हो जाता है कि यदि सचमुच प्रभुता या अपना अस्तित्व क़ायम रखना है तो उसे प्रभुताके लपेटवाली भाषा भी क़ायम रखनी होगी। इसीलिए वाहरी दवावके कारण जव स्वस्थ लोगोंकी भाषाको अपनानेपर वल दिया गया तो इन रोगियोंके सामने समस्या खड़ी हो गयी कि इसका मुक़ाविला कैसे किया जाये। इन्होंने खूव सोच-समझकर यह चाल सामने रखी कि प्रभुताकी भाषाके जितने भी छल हो सकते हैं उनके लिए आप तथाकथित जनभाषाके प्रतिशब्द दें, और यह चाल काम कर गयी। लोग हिन्दीमें अंग्रेज़ीकी वाक्य-रचना करने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह हिन्दी भी अंग्रेज़ी पढ़े-लिखोंकी भाषा हो गयी। कौन समझाये कि एक भाषा दूसरी भाषाकी नज़रसे जव देखने लगती है तो उसकी सूरत ही विगड़ जाती है। शायद जनताकी भाषामें सोचने-समझनेकी प्रवृत्ति प्रभुताके वहुत-से विकारोंको अपने-आप समाप्त कर देती या दुरावके वहुत-से छल-छन्दोंको अपनी सिधाईमें विलकुल भूल जाती। वहुत-से नियम जो सिर्फ़ किसी भी कामको घुमावदार वनानेके लिए वनाये जाते हैं, अपने-आप वेकार हो जाते यदि उन नियमोंके अनुरूप पेचीदी भाषा नहीं रखी जाती।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोलीसे अधिक लिखी जानेवाली भाषाका महत्त्व है, और इन दोनोंमें सामञ्जस्य न रखना ही प्रभुताकी खास निशानी है। बोलते समय जनतान्त्रिक, पर लिखते समय सामन्तशाही हो जाना बहुत ज़रूरी हो जाता है। इस असामञ्जस्यका प्रभाव बहुत जल्दी ही शरीरपर भी पड़ने लगता है। अपनेसे ऊँचे अधिकारीके सामने शरीरका ऊपरी हिस्सा नीचेके हिस्सेसे ४५ अंशका कोण बना लेगा और अपनेसे नीचेके अधिकारीके सामने कुरसीपर १३५ का। वही लोग जो कि जाति-बिरादरी, पारिवारिक सम्बन्ध, गुरु-शिष्य सम्बन्धके आधारपर छोटे-बड़ेके भेदकी आलोचना करते हैं, वे ही नौकरीके स्तरपर छोटे-बड़ेके भेदपर विशेष बल देते हैं। जिन्हें अपने बापका पैर छूनेमें हिचक होती है वे अपने अफ़सरके या मन्त्रीके पैर छूनेका अवसर पानेमें ही अपनेको बहुत गौरवान्वित मानते हैं—यहाँ तक कि होली-जैसे त्योहारके दिन, जब कि रूढ़िवादीसे-रूढ़िवादी भी छोटे-बड़ेका भेद भूलकर बराबरीकी सतहपर एक दूसरेसे गले मिलता है, हमारे ये प्रभुताग्रस्त बन्धु अपने बड़े अफ़सरोंके पैर छूनेकी होड़ लगा देते हैं। मज़ा तो यह है कि जो झुकता है और जिसके सामने झुका जाता है, दोनों ही इस झुकावका असली मर्म समझते हैं; पर दोनोंकी आदतें धीरे-धीरे ऐसी बन गयी हैं कि बिना झुके और बिना झुकवाये उन्हें रसमें कुछ कमी-सी महसूस होती है।

लेकिन इस नमनशीलतासे किसीको यह धोखा नहीं होना चाहिए कि प्रभुताका ज्वर सचमुच ही देहमें लचीलापन लानेवाला होता है। वस्तुतः नमनशीलता भी स्नायु-ग्रन्थियोंका एक विशिष्ट प्रकारका तनाव है जो अपनेसे अधिक तनाववाले शरीरके सम्मुख यदि ढीली न पड़ें तो टूट जायें। वैसे हाथ-पैर इस ज्वरमें ऐसे कड़े हो जाते हैं कि एक हाथके फ़ासलेपर भी रखी हुई चीज़ हटानेकी सामर्थ्य नहीं रह जाती है और १० गज़की दूरी भी सवारीके लिए विवश कर देती है। निश्चेष्टताकी यह स्थिति जब पराकाष्ठाको पहुँच जाये तो समझना चाहिए रोग असाध्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। मुझे एक घटना मालूम है कि एक जेलके अधिकारीने उस जेलसे एक डाकूके भाग जानेके बाद यह रिपोर्ट लिखी थी कि मेरे पास इसके सिवा कोई चारा नहीं था कि मैं दावातमें क़लम बोरूँ और मुख्य कार्यालयको पत्र लिखूँ कि क़ैदी फ़रार हो गया और मैंने अपना कर्तव्य निभाया। सो क़लम-नवीसी कर्तव्य-निर्वाहकी जहाँ एकमात्र साधन हो वहाँ शारीरिक चेष्टा पंगु न हो जाये तो क्या हो? हाँ, रसनाकी चेष्टा ज़रूर बहुत बढ़ जाती है। चाय, लंच, डिनर, बूफ़े (वृषभ-शैलीका भोज), प्रीतिभोज आदि विविध प्रकारके आयोजनोंमें प्रतिदिन विविध प्रकारके रसोंके प्रति ग्रहणशील होनेके कारण रसना बड़ी तेज़ हो जाती है। यही नहीं, कभी-कभी इन भोजोंसे अधिक मधुर और सभी प्रकारके पेयोंसे अधिक मदिर स्वादवाले प्रभुपद-पल्लवोंके रसास्वादनमें जो तृप्ति मिलती है वह रसनाको सबसे अधिक स्फूर्ति प्रदान करती है। यह तो रसनाके द्वारा आदानका विस्तार हुआ। प्रदानमें वह कम विशद नहीं होती। रीतिनीतिकी भीतरीसे-भीतरी सिलवटोंको उधेड़नेसे लेकर अभिधाकी स्थूलसे-स्थूल मात्रा देनेमें रसना उदार हो जाती है। लगता यह है कि इस ज्वरका प्रभाव सबसे अधिक दायें हाथकी उँगलियोंपर और रसनापर होता है।

यह तो रोगके सामान्य लक्षणकी बात हुई। जब मैंने अस्पतालमें जाँचा इस रोगका उपचार क्या है तो मुझे पता चला कि यह रोग दो प्रकारका है: एक स्थायी एक अस्थायी। लोकसेवा-आयोगके द्वारा काढ़े गये रोगी स्थायी रोगके शिकार होते हैं और लोकमतायोगके द्वारा चुने गये अस्थायी रोगके शिकार होते हैं। अस्पतालमें चिकित्सा केवल अस्थायी रोगियोंकी होती है, स्थायी रोगी तो अपने रोगके प्रति इतने अधिक आसक्त हो जाते हैं कि इलाज करानेसे ही वे विद्रोह करते हैं और कोशिश यह करते हैं कि उनकी बदक़िस्मतीसे जो उनके सिरपर अस्थायी रोगी आ गये हैं वे उनको भी अपनी छूतसे स्थायी बना डालें। अस्थायी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोगियोंकी मुसीबत यह है कि उन्हें अपने मरीज़ परिचारकोंकी सावधानीके बावजूद भी कभी-न-कभी चंगे लोगोंके बीच गुज़रना ही पड़ता है, उस समय उनका बुख़ार एक-दो स्वस्थ हवाके झोंकोंसे अपने-आप उतर जाता है। कभी-कभी लोकसभाओंमें, लोकसभाओंके शानदार भवनोंमें, देहाती वैद्योंकी अजवाइनकी धुकनीसे उन्हें जब स्वेदन कराया जाता है तो बुख़ार कुछ हल्का हो जाता है। कभी-कभी हज़ार-हज़ार ज्वरोत्तेजक पदार्थोंके सेवनके बीच मजलिसोंमें एकाध बौड़म प्राकृतिक चिकित्सक ऐसे भी पहुँच जाते हैं जो ज़बरदस्ती उनके सिर और छातीपर मिट्टीका लेप कर देते हैं। उससे भी उनको क्षणिक राहत मिल जाती है; पर यह राहत तभी मिलती है जब कि उनके दायें-बायें कोई स्थायी रोगी न हो। स्थायी रोगी न हो, यह तभी सम्भव होता है जब कि वे बिलकुल ही असावधान हो जायें। चाहे सारी दुनिया असावधान क्यों न हो वे अपने रोगके पालनेसे कभी भी असावधान नहीं होते। इसीलिए बिरले ही ऐसे स्थायी रोगी मिलेंगे जो रोगकी अवधिके बीचमें स्वास्थ्यके क्षण प्राप्त कर सकें। तब सवाल यह है कि यह अस्पताल क्यों खुला? और हैदराबादमें क्यों खुला? दक्षिणकी दिल्लीमें क्यों खुला? समूचे भारतकी दिल्लीमें क्यों नहीं खुला? अस्थायी रोगियोंके लिए क्यों खुला? स्थायी रोगियोंके लिए क्यों नहीं खुला? इन सवालोंका जवाब देना बड़ा मुश्किल है। अस्पताल खुला यही बहुत है। पुराने रोगी अच्छे हों न हों, नये रोगियोंके लिए उनके अभिभावकको एक छुटकारेका भरोसा तो हो गया! रोगके कीटाणुओंसे जब हवाके भी हवास गुम हों तो छोटी-सी चन्दनकी पंखीसे की गयी हवा भी बहुत बड़ा त्राण देती है। यह अस्पताल चाहे सरकारकी ग़लतीसे ही क्यों न खुला हो और चाहे ग़लतीसे ही इसका सही नाम दे दिया गया हो, चाहे इस नामके बावजूद भी वहाँ चिकित्साकी कोई भी व्यवस्था न हो, पर यह सही है कि मात्र यह नाम जन-मनको बहुत दिलासा देता है; क्योंकि रोगसे अधिक, लोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोगियोंसे परेशान हो रहे हैं, क्योंकि ये रोगी हर एक खिड़कीसे झाँकनेकी कोशिश कर रहे हैं, हर एक हँसी-खुशीकी चाँदनीमें बादलोंकी घटा बनकर छाने लगे हैं, और हर एक शिल्प और हर एक रचनापर अपनी मोहर लगानेके लिए व्याकुल हैं। यह अस्पताल खुला, इससे बन्दी पवनको मुक्तिकी आशाकी आशा बँधी, अवगुण्ठनमें कुण्ठित प्रतिभाओंको 'सूर्यम्पश्या' होनेका सपना दिखा, राजमार्गपर मोटरोंकी दौड़-धूपके बीच पैदल चलनेवाले सत्यको निर्बाध गतिसे आगे बढ़नेका साहस मिला, अपने ही नारेसे बहरी स्वाधीनताको अपने पास ही बहनेवाली जीवन-स्रोतस्विनीके कलकल निनादकी झनक मिली और सूतों तथा मागधोंकी जय-जयकारसे सहमी हुई कल-कूकिनीको कण्ठ खोलनेकी उत्कण्ठा मिली। इस प्रभुत्व-ज्वर अस्पतालके पीछे भारतकी जन-भावना है और इसकी सफलताके लिए हमारी शुभकामनाएँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये विपथगाएँ

नदियाँ जब अपना पथ बदलती हैं तो कूलोंका संहार कर डालती हैं और नदियोंसे भी अधिक तेज़ धारवाली जब विचार-शक्तियाँ अपना पथ छोड़ देती हैं तब उनके पीछे चलनेवाली मानवता दिङ्मूढ़ हो जाती है और युगका विध्वंस हो जाता है। आजसे लगभग एक-सौ-दस वर्ष पूर्व इंगलैण्ड-के किसी मर्माहत सहृदयने एक विपथगत नेताके ऊपर कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं और दुःख प्रकट किया था—

"जिसको हमने स्नेह दिया, आदर दिया और जिसका हमने अनुसरण किया, जिससे हमने शिक्षा ली भाषाकी, स्वरकी, जीवन और मरणकी, वही आज हमसे पथविमुख हो गया! शेक्सपीयर, मिल्टन, शेली, बर्न्स ये सभी दिवंगत होकर भी हमारे साथ हैं, अपनी क़ब्रोंसे ये हमारे ऊपर निगाहका सायबान डाले हुए हैं कि हम भटक न जायें; पर वह जीते-जी हमसे विलग हो गया, हम स्वाधीनोंसे विलग होकर पराधीनोंकी पंक्तिमें जा मिला!

"हम प्रगति अब भी करेंगे, पर उसका इशारा न होगा; हमें गीतोंसे स्वर अब भी मिलेंगे, पर उसकी वीणा न होगी। हमारा संघर्ष भी चलेगा, पर वह पूर्णकाम हो चुका होगा। आओ चलें, अपनी पंक्तिसे वह नाम मिटा दें और यह लिख लें कि एक आत्मा और खो गयी, एक कर्त्तव्य और चूक गया, एक पथ और अविगत रह गया। शैतानकी एक और जीत हुई, देवदूतको एक और चोट मिली, मानवका एक और अप-कार हुआ, ईश्वरकी एक और अवमानना हुई। अब तो जीवनकी निशा प्रारम्भ हुई, अब वह हमारे बीच न वापस आये तभी अच्छा; क्योंकि उसके पुनरावर्त्तनके समय संशय होगा, हिचक होगी, परिताप होगा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवश प्रशंसा करनी होगी, साँझकी धुँधली आभा होगी, प्रभातका उज्ज्वल और निर्भर आलोक न होगा, हम बिना उसके ही अब लड़ें यही वर होगा।"

आज हिन्दीमें वैसी ही कुछ स्थिति आयी है, बल्कि उससे कुछ बदतर। देखा जाये तो एक नहीं अनेक विपथगाएं मिलेंगी, स्वतन्त्रताके ध्येयने उन्हें एकोन्मुख रखा था और ध्येय-प्राप्तिके अनन्तर ही उनके पथ स्वतन्त्रताके फलभोक्ताओंके अनुचर बन गये। चारण तो केवल प्रेम और उत्साहका रस उमगाता था, उसने अपने आश्रयदाताके समूचे जीवन-दर्शनका ठेका नहीं लिया था; पर इन्होंने तो स्वतन्त्रताके प्रहरियोंकी प्रत्येक चेष्टाका ठेका ले लिया। चारण समय आ पड़नेपर हाथमें तलवार खींचकर रण-कौशल भी दिखला देता था, इससे उसकी रण-भूमिमें उपयोगिता थी। पर नये युगके ये नये चारण केवल वाक्कौशल दिखला सकते हैं! हाथसे, पैरसे, मनसे और आत्मासे ये नितान्त पंगु हैं। वाणी इनकी बैसाखी है; इस बैसाखीके बलपर 'गिरिवर गहन' चढ़नेकी उमंग कभी 'एम्० पी०'-गीरीका सपना बनकर दौड़ती है, कभी हवा-महलके विलासकी, कभी राष्ट्रनायकके कर-कमलोंसे चमकीले स्वर्ण-पदककी, और कभी केवल शाही आमन्त्रणकी आकांक्षा बनकर फुदकती है। एक और गया, एक और गया—यह कब तक गिना जाये, यह पाँतकी-पाँत जा रही है! इन्होंने पथ बनाया, पथपर दूसरोंको आगे बढ़ाया और स्वयं पाँत तोड़कर यह जमातकी-जमात बिछुड़ रही है: किस-किसपर पछताया जाये, किस-किसपर सिर धुना जाये! मज़ा यह है कि पथ छोड़-कर भी पथका इजारा ये छोड़नेको तैयार नहीं। ये राजनीतिके दण्डधर और साहित्यके जुआधरके दादा दोनों पद अपनी मुट्ठीमें रखना चाहते हैं। ब्राउनिंगका अनुपात तो इकहरा था, एकके पतनपर उनका अनुक्रोश था, और उनके पास यह बल भी था कि हम उस विभ्रान्तका नाम काट-कर आगे बढ़ेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आज नाम काटने बैठा जाये तो समस्या होगी कि किसको लिया जाये। 'चाँदीके टुकड़ोंपर और सम्मानकी चमकपर' अपनेको बेंचनेवाले हर एक युगमें रहे होंगे पर उन्हें कमसे-कम अपनेको स्वाधीन कहनेका दम्भ न रहा होगा; आज तो जो बिक गये वे भी यह दम रखते हैं कि हम स्वतन्त्र-चेता हैं, हमीं राजनीतिकी नकेल लिये हैं और हमीं पथ-द्रष्टा हैं। वैसे स्थिति शायद यह है कि अलबेला जिधर ले जाये उधर हाथमें डोर लिये आप भी डगरते चले जायेंगे, क्योंकि नकेल आपके सिरके बहुत ऊपर है और डोर आपको बाँधनेके लिए है अलबेलेको नहीं। आप स्वागत-गीत लिखेंगे—किसका ? यौवनका नहीं, यौवनकी उमंगका नहीं, वसन्तका नहीं, वसन्तके मीतका नहीं, विश्वात्माका नहीं, विश्वात्माकी ज्योतिका नहीं; बल्कि आज बुल्गानिनका, कल शाह सऊदका और परसों महाराज त्रिभुवनका; आज शान्तिका, कल इस्लामके बन्धुभावका और परसों बौद्ध अनात्मवादका !

आप प्रशस्ति लिखेंगे नेहरूकी या विनोबाकी, और प्रशस्ति करते समय निखिल मानवताको इनसे हेठ कर देंगे—इसलिए नहीं कि सचमुच ही आपके हृदयमें नेहरू या विनोबाकी कमनीय मूर्त्ति विराजमान है; बल्कि इसलिए कि आपका हृदय नेहरू या विनोबाकी राजनीतिके हाथों बिक चुका है। हमें अब इसकी लेशमात्र भी चिन्ता नहीं कि आप बन्दीजन हो गये, पर इसका अमर्ष अवश्य है कि बन्दीजन होकर भी आप कविके अधिकार, क्रान्त-द्रष्टाके दावे रखना चाहते हैं। कभी आपने राष्ट्रगीत लिखे थे, बापू-वन्दना लिखी थी, खादीके फूल खिलाये थे, कवितामें सूत काता था, स्वतन्त्रताकी प्यास जगायी थी, और देशकी गुहार लगायी थी: आज स्वतन्त्रताके सेनानियोंकी तरह आप भी अपने गीत भुनाना चाहते हैं, आज भी उस पिछली कमाईके बलपर राष्ट्रके कवि कहलाना चाहते हैं। पर आपने तो वह कमाई एक संग उसी समय भुना ली जब आपने सत्ताकी कृपा-कोरसे संसद्-सदस्यता पायी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रेडियोकी प्रोडयूसरी पायी, और इसके अलावा नेग-न्योछावरका मौक़े-मौक़ेपर हक़ पाया ! इससे अधिक आपको क्या चाहिए ?

"हँसब ठठाइ फुलाइब गालू , एक संग नहिं होंहि भुआलू।"

हमें आपका पथ-प्रदर्शन नहीं चाहिए, पर आप रास्ता छेंककर न खड़े हों। राष्ट्रिय एकताके अनुशासनके नामपर आप हमारा दाय न छीनें; आप बन्दीजनकी तरह रहें, हमारे पथके दावेदार न बनें। हमारा दाय है : "सन्तनको कहा सीकरी सों काम," हमारा दाय है : "सिंहनके लेहड़े नहीं, हंसनकी नहिं पाँत," हमारा दाय है ऊर्ध्वबाहु होकर विरुवन करना : "धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते"; हमारा दाय है : देना रंकको और राजाको पर लेना ब्रह्मासे भी नहीं। आप विचारोंके पंक्ति-बन्धनकी निन्दा करते हैं और हमको अपने टुटपुंजिहे सत्याभाससे बाँधकर रखना चाहते हैं। आपने जिस ओसको पानी समझा है उसीको हम भी पानी माननेको विवश हों, यह कौन-सा अनुशासन है ? जिस तरह अपने 'आनन की क्षति' बिसारकर 'गच काचमें' पड़ी अपने 'तनकी छाँहमें' अपने शिकारका बोध आपको होता है वैसा बोध हमें भी हो, वैसी भूख हमें भी सतावे, यह कौन-सी विवशता है ? हम तो आनपर जी रहे हैं, क्योंकि हमारे पथ-प्रदर्शक हैं तुलसी, जिनकी सीख है—

"चातक तुलसीके मते पियहु न स्वाती पानि।
प्रेमतृषा बाढ़ति भली, घटैं घटैगी आनि॥"

इसलिए विपथगाओ, तुम जाओ राजस्थानकी मरुमरीचिकामें खो जाओ, लुप्त हो जाओ, हमें कुछ भी दुःख न होगा। पर हम जो पत्थरोंके हृदय-रन्ध्रसे रसधार निकाल रहे हैं वह इसलिए नहीं कि वह रसधार पातालमें समा जाये, बल्कि इसलिए कि हमें त्रिपथगामें मिलना है और त्रिपथगाके द्वारा अनन्त महासागरसे एकाकार होना है। हमें मत लुभाओ, हमें अपने विपथपर मत भटकाओ, हमें राज-मार्गकी सुविधा नहीं चाहिए, हम अपने दुस्तर पथपर चलनेके लिए कृतसंकल्प हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब प्रश्न यह है कि हम कौन ? स्वतन्त्रताके बाद सम्मानकी, यशकी और नये मानकी जो बाढ़ आयी उसमें बहनेसे बचे-खुचे वटपत्रशायी लोग, जो अपने अनजानमें बच गये, जो इसलिए बच गये कि धरित्रीका संबल वटपत्र पकड़े रहनेकी ममताने उन्हें बाँध रखा। हम बचे, यह हमारे सुकृतका नहीं, संकल्पका बल था। इसलिए आज हम जो आधे रास्तेमें छोड़ दिये गये हैं अपने पथ-निर्देशकोंके द्वारा, वह दम्भ करनेके लिए नहीं, उन पथ त्यागकर चले जानेवालोंको ललकार देनेके लिए भी नहीं; हम बचे हैं अपना पथ स्वयं निर्माण करनेके लिए, हम बचे हैं अपने साहित्य-कारको अशेष प्राण-बलसे चुनौती देनेके लिए, और हम बचे हैं टिड्डियोंकी ईतिसे धरतीकी फ़सल बचा सकनेके लिए। इस फ़सलको तो और भी भय घेरे हैं। यार लोगोंने सुझाया कि साहित्य, लोक-गीत, कला ये सब बहुत ही शक्तिशाली माध्यम हैं जनताको जीतनेके, और प्रभुओंने फ़रमाया, हाँ 'कवी सम्मेलन' और 'फ़ोक-ट्यून'से योजनाका अभिवर्धन होगा। आई० सी० एस० का दिमाग़ चरखीकी तरह डोल उठा : पञ्चवर्षीय योजना लोक-गीतों, नाटकों और कविताओंके साँचोंमें ढाली जाने लगी। 'पत्रं पुष्पं'की सुन्दर व्यवस्था हुई। इन प्रभुओंको और उनके परामर्श-दाताओंको समझानेके लिए हमारे पास समय नहीं है, क्योंकि ये उखड़े हुए बिरवे हैं, उनको कहीं भी रोपा जा सकता है, पर कहीं भी रोपनेपर उसमें फल नहीं आनेवाले, पल्लव चाहे आ भी जायें। हमारे पास बिगुल बजाकर अभियान करनेका आडम्बर नहीं है कि हम भी नारे लगाते हुए प्रदर्शन करें, अधिकारोंकी संवैधानिक तरीक़ोंसे माँग करें; हम केवल अपनी अनवरत साधनासे, अपनी सत्यानुसन्धित्सासे और अपनी निष्ठासे (आस्था कहनेके लिए मेरे पास साहस नहीं है, क्योंकि यह काफ़ी गहन शब्द बन चुका है) और अपने जीवन-रसके मुक्त दानसे यह सिद्ध कर सकते हैं कि जिसको तुम सशक्त माध्यम कहते हो वह सशक्त इसलिए है कि निर्बन्ध है और तुम जिस अभिवर्धनकी आशा लगाये बैठे हो वह अभिवर्धन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब आयेगा जब तुम अपने माध्यमसे जनताको समझनेकी चेष्टा करोगे। इतने बड़े-बड़े लोग भटक गये, यह सामुदायिक भ्रान्ति हमारी तितिक्षाके लिए चुनौती है। इस चुनौतीको लेनेका मतलब है अपना सर्वस्व दाँवपर लगाना। हमें कल्पित भयोंसे नहीं जूझना है, हमें काँटोंसे नहीं उलझना है, हमें ममियोंसे नहीं पूछना-जाँचना है; हमें असत्यसे और बहु-प्रचारित असत्यसे जूझना है क्योंकि असत्य ही मनुष्यकी सबसे बड़ी कायरता है, हमें उलझानेवाले कण्टकोंमें कुसुम खिलाना है, हमें अपनी जागरूक परम्परा से निर्देश लेना है।

हम अपराधी होंगे यदि हमने सत्य नहीं कहा, हम अपराधी होंगे यदि हमने अपना स्वरूप नहीं पहचाना, हम अपराधी होंगे यदि हमने अपनी पहचानका लाभ अपने असंख्य बन्धुओंको नहीं पहुँचाया। विपथगाएँ हमारा पथ नहीं मोड़ सकतीं यदि हम मुड़नेवाले तत्त्वके खुद न बने हों। आज राजमार्गपर रपटन है, फिसलन है, हमें पगडण्डी पकड़नी होगी, तभी हम अपनी मंज़िल तक पहुंचनेकी आशा रख सकते हैं। उन पथिकोंको विपथगाओंसे कोई आशंका नहीं होनी चाहिए, क्योंकि पथ ही उनके कल्याणका दायित्व अपने ऊपर लेनेवाला है, पथ ही उन्हें तार देगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जयन्ती मंगला काली

मेरे गाँवमें दशहरा सिमटकर तीन चीज़ों तक आ रहा है : नीलकण्ठका देखना, शिखामें यवांकुरोंका बाँधना और रावणका फूँकना। कालीके थानपर नवमीकी पूजा जो शारदीय और वासन्तीय दोनों नवरात्रोंमें नौ दिन धूम-धामसे होती थी वह अब चैतकी रामनवमीको देवीके नीमपर नयी ध्वजाके फहराने तक ही सीमित रह गयी है। लोग कहते हैं मूल्य बदल गये हैं, सिक्का घिस गया है : अब उसका चलना मुश्किल है। यही नहीं, देखते-देखते देवीने अपने वाहन सिंहको बनारसीबाग़में दाखिल करा दिया और शंकरजीके नन्दीपर अपनी सवारी कसनी शुरू कर दी है। लोग कहने लगे हैं कि यह 'पियदसी' के 'धम्मचक्क' का 'पवत्तन' है कि गौरीने नन्दीको अपना वाहन स्वीकार कर लिया, कुछ तो इसलिए कि शंकरजी अब एक जगह ही पड़े रहते हैं, नशापानी छूट गया है, कहीं आते-जाते नहीं। काशीके मुमुक्षु-भवनमें दाखिलाकी दरख्वास्त भेजकर दुर्गाकुण्डकी सीढ़ियोंपर ही लेटे रहते हैं। बहरलाल, ज़माना बदल गया, इतना तो सच ही है।

लोग नीलकण्ठ देख लेते हैं इतनी ही बहुत बड़ी ज़्यादती है, क्योंकि नीलकण्ठ देखते ही विश्वविष-पायीकी याद आनेकी आशंका हो जाती है। वैसे बन-बाग़में अब नीलकण्ठ इतने विरल हो गये हैं कि मेरे ननिहालमें तक़ावी वसूलनेके लिए क़ुर्क़-अमीन जब आते हैं तो केवल एक संकेत इस छोरसे उस छोर तक बिजलीकी तरह दौड़ जाता है—'नीलकण्ठ!' अर्थात् पलायन करो क़ुर्क़-अमीन आ गया! इस प्रकार नीलकण्ठ 'लुप्त होने'का मुहावरा बन गया है। कई गाँवके लोग एक जगह जमा होंगे, लड़के नीलकण्ठ तलाशकर ढेलेबाज़ी करके उसे दूर किसी पीपलके पेड़से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उड़ा लायेंगे और तब लोग उस नीलकण्ठका दर्शन करके दशहराकी एक बड़ी रस्मकी अदायगी कर लेंगे। जो विषपायी हमारे बीच धतूर खाकर नाचा करता था, जो हमारी सुषुप्त आनन्द-वृत्तिको डमरू बजा-बजाकर नाचनेके लिए जगाया करता था, जो हमारी अन्नपूर्णाके दरवाज़े हमारी ही तरह झोली लिये खड़ा रहता था, जो वन-बाग़, खेती-गृहस्थी सब जगह हमारी प्रत्येक गतिके साथ ताल देता हुआ विचरण करता था, वह सदा-शिव आज इस तरह 'नीलकण्ठ' हो गया कि हमारी कृतज्ञता सालमें एक दिन उसके किसी छोटेसे प्रतीकको देखनेमें ही कृतकार्य हो जाती है। हमारा जातीय जीवन क्या सचमुच ही अपने-आपमें इतना खो गया है कि उसे अपने मनके सोते-जागतेका संकल्प विसर गया?

सवाल बड़ा टेढ़ा है; पर जवाब पानेके लिए न जाने कितनी श्रुतियाँ, कितनी स्मृतियाँ, और कितनी पुरानी प्रीतियाँ श्वास-प्रश्वासके रन्ध्र-रन्ध्रसे कान लगाये खड़ी हैं; देशकी दिशा-दिशा इस जवाबको पानेके लिए उत्सुक है; गाँव-गाँवके नीम और पीपल, घाट और कुएँ, नदी और नाले, पेड़ और पल्लव, पशु और पंछी इस सवालके जवाबकी बाट जोह रहे हैं। और हम हैं कि कहते हैं कि सवाल दोहरा दो, अपनी भाषामें नहीं, हमारी नयी एस्पेरेंटोमें इसका अनुवाद कर दो, वह एस्पेरेंटो जो हमारी मिली-जुली संस्कृतिकी—कॅम्पोज़िट कल्चरकी—जीती-जागती वाणी है, मिली-जुली संस्कृतिकी भाषामें संज्ञाएँ तो अपनी भाषासे ली गयी हैं। क्रियाएँ दूसरी भाषासे, प्रत्यय तीसरी भाषासे, और अव्यय चौथी भाषासे। सारांश इस कॅम्पोज़िट कल्चरकी भाषा मनुष्यकी बोली नहीं ऑर्केस्ट्रा है। यह कॅम्पोज़िट कल्चर हमारी धरतीकी फ़सल चौगुनी करनेवाली है, और हमारे अभावका रोना ख़त्म करनेवाली है।

लीजिए अपनी एस्पेरेंटोमें ही सवाल कान खड़े करके सुन लीजिए—आपकी व्यक्तिगत सत्तामें, उसकी पूर्णतामें अपनेको अभिव्यक्त करनेवाला समष्टितत्त्व आज किस गलीमें खो गया है? आप पद-पदपर उसकी गुहार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगाते हैं; जन-कल्याण, बहुजन-हित, बहुजन-सुख, विवेक—न जाने किस-किस नामसे उसे पास बुलाना चाहते हैं, पर वह कहाँ छिप गया है? कुछ अता-पता है? आप आज जिसके बिना पंगु होकर रीते हाथ यहाँ-वहाँ पसार रहे हैं, एक-दूसरेपर अपनी खीज उतार रहे हैं, वह आपका राष्ट्रपुरुष किस गिरि-गह्वरमें सो गया? नाना प्रकारकी वेदियाँ सजाकर, नाना प्रकारकी आहुतियाँ जुटाकर, भाँति-भाँतिके यज्ञ जो आप ठान रहे हैं, उनका होता कहाँ मौन बैठा है?

इसका जवाब आपको देगी वह जई जो आपकी शिखामें मात्र उपचार रूपमें विजयादशमीके प्रातःकाल एक जरा-जीर्ण ब्राह्मणके हाथोंसे बाँधी जा रही है इस मन्त्रके साथ—

"जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते॥"

माना आपकी शिखा लुप्तप्राय है, आपकी लौ शीतल है, एक आँगनके प्रान्तरमें बे-फ़सलके बोये हुए जौकी अँखुड़ियोंमें वह हरियाली भी नहीं है जो जुते हुए खेतमें समयसे बोये जौके अंकुरोंमें होती है; यह भी माना कि बिना अर्थके अनुस्मरणके ब्राह्मणका मन्त्र-पाठ भी वृक्षसे उत्पाटित वल्कलकी तरह रसहीन हो गया है, परन्तु शिवकी सुषुप्तिकी जिज्ञासाका समाधान उस शक्तिके ही ध्यानमें है जिसके ये केन्द्रित रूप हैं : जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, क्षमा, धात्री, स्वधा और स्वाहा।

शक्तिका सूत्रपात है अपनेको उत्कृष्ट सिद्ध करनेमें। उत्कृष्ट सिद्ध हो, यह शक्तिका गतिरोध है। उत्कर्षका काम्य परिणाम है मंगलप्रद होना, दूसरेका कल्याण करनेमें समर्थ होना। पर जो मंगलके लिए संघर्ष-क्षेत्रमें उतरेगा उसे अमंगलकारी तत्त्वोंके विनाशके लिए कालरूप भी बनना होगा। यही कालीकी सार्थकता है। परन्तु काली जिसका विनाश करती हैं उसके लिए भी भद्रकर—स्वस्तिकर होती हैं। अमंगलका नाश अमंगल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारीके कल्याणकी भावनासे होता है। भद्रकाली इसीलिए कालसे भी स्वस्तिवाचन कराती हैं। कालका स्वभाव है ग्रसना। कालीका भी कार्य है संहार करना, पर वह संहार जब भद्रकी भूमिका निर्माण कर देता है तो भद्रकाली अवतीर्ण हो जाती हैं। यह भद्रकाली विनाशकी लीला-भूमिमें जब अकिंचन बनकर नव-निर्माणके लिए हाथमें खप्पर लेकर चल पड़ती हैं तो सामने कपालिनी प्रस्फुरित हो जाती हैं। विनाश करनेवालेकी कल्याण-कामना अपनेको जबतक इस प्रकार विनम्र न बनाये, ग्रहणशील न बनाये, तबतक वह कल्याण-कामना केवल मानसिक विलास बनी रहती है। एक बार इस विनम्रताके स्तरपर उतरते ही कठिनसे-कठिन, दुस्तरसे-दुस्तर और दुर्गमसे-दुर्गम पन्थ भी पार करनेका उत्साह अपने-आप उमड़ आता है, क्योंकि तब बोध यह रहता है कि यह जीवन-यात्रा अपने लिए नहीं है, यह असंख्य नव-विकासोन्मुख प्राणियोंके लिए है। दुर्गा उसी संहित शक्तिकी प्रतीक हैं। अकेले जब आदमी निरुपाय हो जाये, आदमीके देवता कूच कर जायें, तब प्रत्येक देवताके तेजोंशसे दुर्गा समुद्भूत होकर अवतीर्ण होती हैं। उनके चरणके विन्याससे असंख्य शव शिव होकर जाग उठते हैं। वह दुर्गा इन शवोंको शिव बनाकर उनके बीच स्वयं शिवा बन जाती है : उनसे अभिन्न, उनके प्रत्येक संकल्पसे अभिन्न, उनकी प्रत्येक चेष्टासे अभिन्न, और उनकी प्रत्येक परिणतिसे अभिन्न। यह सन्तुलन जब आता है तो आदमी अर्द्धनारीश्वर बन जाता है, वह मंगलके रूपमें वैयक्तिक इकाई नहीं रहता, वह विराट् शिवका रूप धारण कर लेता है। तभी उसमें क्षमा बस सकती है। सही मानेमें तभी वह आघात ओढ़नेमें समर्थ हो सकता है, शिवको अपनेमें आत्मसात् करनेमें समर्थ हो सकता है, चिताभस्मको विभूतिमें परिणत करनेकी शक्ति पा सकता है। यह क्षमा ही मनुष्यको धात्री या धरित्रीसे एकाकार करती है। धरतीके ऋणसे तभी वह मुक्त होता है और तभी वह धरतीके निश्शेष गुणोंको अपनेमें धारण करके विश्वको धारण करनेकी शक्ति पा जाता है, तभी वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदारताकी वेदीपर अपनेको अर्पित करनेके लिए स्वधा बना सकता है और उस विद्याको समष्टिके अभावरूपी अनलमें आहुति देकर अपनेको स्वाहा बनाकर चमका सकता है।

जयन्तीका चरम उत्कर्ष है स्वाहामें। आत्म-विस्तारका चरम परिणाम है आत्मत्यागमें। यही भारतीय शक्ति-साधनाका सहज क्रम है, जिसके बिना शिवको पाना स्वप्न ही समझना चाहिए। आपके प्रश्नका यही उत्तर है।

जिस रावणका पुतला आप फूँककर विजयका त्योहार आज मना रहे हैं, बच्चे सन्ध्याके आलोकमें जिस पुआलकी आगको ताप-तापकर प्रसन्न हो रहे हैं, वह रावण धरित्रीकी कन्या परम शक्ति सीताका हरण करनेवाला अमानव था, जनशक्तिका सबसे बड़ा शत्रु था। वह जनशक्ति रूपिणी सीता लोकरंजनमें रमे हुए महामानवकी प्राणेश्वरी थीं। आप रावणके दाहपर प्रसन्नता मना लेते हैं, पर शक्तिके पुनरुद्धारकी बात नहीं सोच पाते—उस शक्तिकी जो आपकी अकेली नहीं, जो जन-जनकी है, जो जन-जनमें भावित परम परमेश्वरकी शक्ति है, जो युग-युगकी शक्ति है, जो देशके कण-कणकी शक्ति है।

शायद इसलिए कि आपके आकाशमें शरद्की प्रसन्नता नहीं निखरी या आपकी दृष्टिमें खंजनकी धवलापांगता नहीं फैली, या आपके मानसरमें विवेककी हंस-पंक्ति नहीं उतरी, या आपके जीवनके कूल आकाशकी मुक्त भाषासे अपरिचित बने रहे, या आपके आँगनमें जवाकी अरुणाई नहीं फूटी, या आपके द्वारपर धानकी दूध लेती मंजरियोंकी झालरें नहीं टँगीं, या आपके सिन्धुमें पूर्ण ज्वार नहीं आया, या चन्द्रमा उदयगिरि गह्वरमें ही सोया पड़ा रहा, या आपकी शारदा आपके मस्तकपर हाथ नहीं फेर पायीं। कारण जो कुछ भी हो, आप अपनी शक्ति नहीं पहचान सकते, आप अपने शिवको नहीं देख सकते, और आप अपनी धरतीके स्नेहाञ्चल बीजनका संस्पर्श नहीं अनुभव कर सकते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसीलिए आपको ये उत्सव आज उपचार हैं, यह दशहरा केवल तमाशा है, यह विजया आत्म-पराजयकी बेला है, और यह उल्लास कुण्ठाका आवरण है। नहीं तो मनमें केवल एक वार

"जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते॥"

इसके प्रत्येक पदकी भावना मात्र करनेकी देरी है, और तव यह उत्सव हमारे शक्ति-संचारका, हमारे विजयोल्लासका और हमारे शिव-संकल्पका क्षण वन ही सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिये-बातीका मेल

दिये-बातीके मेलसे जाने कितनी साँझोंका लगाव है। आज मैं उन साँझोंका हिसाब खतियाने बैठा हूँ तो लगता है कि बाती मिलानी मुझे अभी नहीं आयी, नहीं ही आयी। कभी स्नेह उतरा गया, कभी बातीमें स्नेह भिन न सका, कभी दियेमें बातीका ठीक सिरा ठीक जगहपर नहीं रख सका। हाँ सब सरञ्जाम ठीक हो तो बाती उकसानेमें मैं जरूर प्रवीण था और अब भी शायद हूँ। खैर, बात जब शुरू ही की है दिये-बातीके मेलकी तो सबसे रंगीन भूलसे ही बात आगे बढ़ाऊँगा। मैं जान-बूझकर तिथि-क्रमसे नहीं चल रहा हूँ।

सत्रह वसन्त बीते, एक बाती मैंने भी मिलायी थी और अत्यन्त मधुर कण्ठोंसे यह उलहना सुना था, "ललन तुहें आवेला मेरवै न बाती!"— प्यारे, तुम्हें बाती मिलानी नहीं आती! मैं उस समय झुँझला उठा था। जेठकी रात बिछुए उतारकर विश्रामकी तैयारी कर रही थी। आँखें कई रातोंसे उनींदी थीं, पलकें भारी थीं, उँगली बाती मिलाते समय अचानक ही लौ छूनेके कारण सेंवती पड़ गयी थी, उसपर भी दो-तीन अल्हड़ किशोरियोंका यह ताना : "तुम्हें बाती मिलानी नहीं आती!" चिढ़कर बोला, "तो आप लोग ही बताइए न कौन-कौन-सी बाती कैसे-कैसे मिलाऊँ? दो ही तो बातियाँ थीं, मैंने उन्हें मिलाकर एक कर दिया।" मेरी एक शोख सालीने तपाकसे जवाब दिया, "ऐसे कहीं बाती मिलायी जाती है! दोनोंकी लौ जबतक एक न हो जाये, दोनोंका सिरा जबतक बँटकर एक न हो जाये, तबतक बाती कैसे मिली कही जाये?" फिर दूसरी बार उँगली जलाकर मैंने यथाविधि बाती मिलायी थी और नये-नये गहे हाथने वह मिली बाती उकसायी थी। यह प्रेम और कर्मकी बातियोंका एकीकरण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कई बार टूटा, कई बार जुड़ा, पर बराबर गहन अन्धकारमें लौके चंचल होनेपर उस पहली बातीकी स्मृतिने लौ स्थिर कर दी।

वचपनकी धुँधली स्मृतिने भी दिया-बातीके खेल अभी सँजो रखे हैं। दीवाली, जिसे हम लोग 'दिया-दियारी' कहते थे, हमारा खास त्योहार था। दो-तीन दिन पहलेसे कमरमें बाँधनेके लिए कुम्हारके घर बैठकर मन-माफ़िक़ घण्टियाँ बनवाते; माटीका पूरी गृहस्थीका सामान—चूल्हा, चक्की, ओखली, मूसल, सिल-लोढ़ा और नाना भाँतिके बर्तन—गढ़वाते; और छोटी दीवालीकी साँझसे ही दिया जलता, और फिर तो लम्बी-चौड़ी बखरीका कोना-अँतरा दियोंसे सज जाता। ज्यों ही एक दिया बुझनेको होता, त्यों ही हम लोगोंकी टोली निर्वाणोन्मुख दीपकी वर्त्तिका दूसरे स्नेह-भरे दीपकी वर्त्तिकाके साथ मिला देती। दियोंकी लौके साथ हमारा रतजगा होता और भोरकी नींद दादीके 'दलिद्दर' खदेड़नेके शोरसे उचट जाती। 'दलिद्दर'को घरके बाहर निकालकर दादी इन दियोंके काजलसे हम लोगोंकी आँखें आँजतीं : दियोंकी ज्योति हमारी आँखोंमें देतीं।

दियेकी ज्योतिकी जलनके साथ-साथ उसी दियेके काजलकी वह शीतलता कभी-कभी दीप-दानके अनेक बार दोहराये मन्त्रकी गूँजके साथ कौंध जाती है—

"चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्रात्प्राणश्च वायुश्च मुखादग्निरजायत॥"

दीपका सम्बन्ध चन्द्रमासे है क्योंकि वह शीतल है, मनसे है क्योंकि वह अन्तरको आलोकित करनेवाला आह्लादका प्रतिविम्ब है। उसका प्रतिरूप सूर्य है जो विराट् पुरुषका बाह्य नेत्र है, उसका प्रतिरूप अग्नि है जो शिवकी तीसरी आँख है, उसका सम्बन्ध प्राणसे है क्योंकि वह प्राण वायुका अभाव नहीं स्थिरता मनाता है। उसका सम्बन्ध उद्यम और उद्यमाधीन लक्ष्मीसे है। दीपोंका त्योहार लक्ष्मी-पूजाका त्योहार है। दीपावलीके अवसरपर वचपनका वह उत्साह तो नहीं रहा, परन्तु मनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊपर यह संस्कार ज़रूर है कि तीन गुन और तीन अवस्थाकी ही कपास सही और तुरीयावस्थाकी ही वाती सही, पर दिया चाहे माटीका हो चाहे विज्ञानका, दिया-वातीका मेल ज़रूरी है, तभी उससे शीतल प्रकाशकी आशा की जा सकती है।

आज सोचता हूँ कि विजलीके रंगीन बल्बोंने वातीकी अनिवार्यता खत्म कर दी, स्नेहको भी ठुकरा दिया, तब भी वाती दियेका पिण्ड क्यों नहीं छोड़ती ? विद्युदालोकित सौधोंपर भी दियोंकी पाँत क्यों सजायी जाती है ? रातको दिन बनाकर भी कलशके ऊपर माटीका दिया रखे बिना पूजन क्यों नहीं प्रारम्भ होता ? देवता-पितरोंके पथ क्यों अब भी टिमटिमाते-झुलमुलाते दियोंकी वाती उकसानेपर ही आलोकित होते हैं ? मर्करी लाइटकी झकझकाहटके बावजूद भी अभीतक क्यों सौन्दर्यका उपमान लहकती दीपशिखा बनी हुई है, ज्ञानका उपमान निर्धूम दीपशिखा बनी हुई है, ध्यानका उपमान निष्कम्प दीपशिखा बनी हुई है, और बलिदानका उपमान भभकती दीपशिखा बनी हुई है ? अभीतक क्यों संयोगका सुखद क्षण वातीकी उकसानमें ही उद्भासित होता है और वियोगका दुःसह क्षण भी वातीके धुँअठनेमें ही धूमिल होता है ?

अरे, मैं भूल ही गया था ! दिये-वातीका राजनैतिक महत्त्व है : उसका विरोध है खेतिहरकी हँसियासे, लुहारके हथौड़ेसे, मजूरकी झोपड़ीसे, किसानकी गोईसे, और गाँवके बरगदसे। आज दीवाली मनाते समय याद रखना चाहिए : बैलोंकी चरनके पास दिया नहीं रखना है, झोपड़ीके भीतर दिया नहीं रखना है, बर बाबाके थानपर दिया नहीं रखना है, अपने औज़ारोंके पास दिया नहीं रखना है, नहीं तो अनुशासन-भंगकी काररवाई होगी। दीपककी लौ बैरिन है प्रगतिकी और पराक्रमकी। वह प्रतीक है गलित परम्पराकी और व्यक्तिकी कुण्ठाकी। दीपक-राग ही शोषक राग है।

तो क्या दीपककी सजीव उपमाके कारण ही 'दीपशिखा'के नामसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुकारे जानेवाले महाकवि कालिदासकी सत्ताके बारेमें यह उक्ति कि "प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्"— एक दियेकी लौसे जैसे दूसरा दिया लौ पकड़कर आगे बढ़ जाये — सचमुच प्रतिक्रियावादी है?

दियेकी वातीने ये प्रश्न उकसा दिये, इनका समाधान कहाँ प्राप्त करूँ? परम्परा और प्रगतिका अवरोध कैसे स्थापित करूँ? परम्पराके झण्डाधारी उसका उलटा अर्थ पूर्वम्पूर्वा करते हैं, और प्रगतिके धनी-धोरी आसमानी खेतीको ही सबसे बड़ी प्रगति मानते हैं। माटी है, तेल है, रूई है, वाती बनानेवाले हाथ भी हैं, भीतर-बाहर चारों ओर प्रकाशको लीलने के लिए आतुर असीम अन्धकार भी है, दियेका पर्व भी है, पर कोई बात ऐसी है कि दिया दूसरे दियेकी ज्योति क्या जगायेगा, अपने आस-पास जितने भी टिमटिमाते निंदियाये दिये हैं उन्हें ही शीशमहलका विलासी प्रकाश खा जानेको आतुर है! इस प्रकाशसे चौंधियायी आँखें दिया-वाती देख नहीं पातीं, विद्युद्विजड़ित उँगलियाँ वातीका संस्पर्श तक नहीं पातीं, उन्हें मिलानेकी तो चर्चा ही क्या?

और सारे ज़मानेकी बात क्या करूँ, खुद अपनी ओर जब देखता हूँ तो यही पाता हूँ कि दिया-वाती जलानेकी मेरी हर कोशिश चूकती ही चली गयी। बचपनमें एक बार दीवालीके दिन मैंने कोदोंकी पूरी डेहरी भस्मसात् कर डाली। शादीकी बाती मिलाते समय अपनी ही उँगलियाँ जला लीं। १९४२में बलिदानका दीप जलानेकी साध भभककर बुझ गयी। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके 'सबद महल'में साहित्य-साधनाका दीप जलाने चला तो वह महल ही ढह गया। विन्ध्याटवीके खण्डहरों और टौरियोंपर दिया रखने चला तो अन्धकारकी अभ्यासी आँखोंको भ्रम हुआ कि यह उनकी शान्ति भंग करनेका प्रयास है। लोक-संस्कृतिके डीह-डाबरपर दिये रखने चला तो सरकारी प्रचारकी आँधीने उन्हें ग्रस लिया। और अब ज्ञानका दीप इस गोरखपुरी गोचरमें रखनेका प्रयास कर रहा हूँ तो मुझे टोका जाता है: यहाँ पीली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरसोंके तरल स्नेहका दिया जलाना पाप है, यहाँ केवल मधु-संग्रही मक्खियोंके रसके जमे हुए सीठे मोमकी वत्ती जलायी जा सकती है। यहाँ प्रतिबन्ध है ताज़गीपर, यहाँ प्रतिबन्ध है उकसानेकी प्रक्रियापर, यहाँ प्रतिबन्ध है एक दीपसे दूसरा दीप परिवर्तित करनेके प्रयत्नपर, यहाँ प्रतिबन्ध है दियेमें तपका नया तेल भरनेपर : बस जितना जमा हुआ मोम है उसे गला डालना यही जीवनकी परम चरितार्थता है। अभी मैं शहद संचय करना ही सीख पाया, मोम बनानेकी तो बात ही क्या! मेरे पास वह मोमवत्ती नहीं जो बार-बार गलकर भी फिर नीचे जैसीकी-तैसी जम ज़ाया करे। सो इस गोशालामें — गौका अर्थ, क्षमा करें, वाणी भी है!— दीप जलानेका समस्त संकल्प यहाँ अपार्थ है जबतक कि अपनेको मोमवत्ती में परिणत करनेकी प्रक्रिया नहीं मालूम। केवल इतना मालूम है कि मेरी दियेकी बाती स्नेह परिपूरित रह सके, आँधी-पानीमें उसकी लौ अनझिप रह सके, बाती पूरने और बाती उकसानेवाली शक्ति बनी रहे तो इस महाश्मशानमें अपने जीवन-देवताको जगानेकी यह शव-साधना इस रक्षा-दीपसे रक्षित बनी रहेगी, सिद्धि मिले या नहीं, पर कमसे-कम सिद्धिका विश्वास बना रहेगा।

मैं जानता हूँ कि जबतक यह कामना है कि "यों जगि जोति उठै तन की उकसाइ दई मनों बाती दियाकी" तभीतक जीवनमें स्वाद है और तभी तक जीवनकी जलनमें भी स्वाद है।

७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनजारा मन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सदा अनन्द रहै एहि द्वारे

सम्पादकजी,

जय फागुन !

बहुत दिनों बाद कल रातमें कहींसे यह फाग सुनायी पड़ा : "सदा अनन्द रहै एहि द्वारे मोहन खेलें फाग !" पण्डित विनोद शर्माके यहाँ कल गहरी छनी ही थी, फागके रागने चौगून रंग जमा दिया, मन बहक गया। विद्यापतिका 'नव वृन्दावन' याद आया, देवका 'द्रुमपलना' याद आया और द्विजदेवका वह विस्मय-विमुग्ध छन्द याद आया—

"फूले घने-घने कुंजनि माँहि नये छविपुंजके बीज बये हैं,
त्यौं तरु-जूहनमें द्विजदेव प्रसून नये ई नये उनये हैं।
साँचो किधौं सपनौं करतार विचारत हूँ नहिं ठीक ठ्ये हैं,
संग नये त्यों समाज नये सब साज नये ऋतुराज नये हैं॥"

फिर गाँवकी होली याद आयी। लगता है अब वह सब अपूर्व सुषमा वासी पड़ गयी। मेरे गाँवमें शिवरात्रिसे ही फागकी धूम मचती थी, झाँझ और मृदंगकी गूँजसे आकाश भर जाता था, भोर होते-होते तक चाँचर मची रहती, हम लोग गा नहीं पाते तो गोइँठी माँगते, माँगनेपर न मिलती तो गोहरा उजाड़ते, सम्मति मैया (संवत्सर) की लकड़ीका बन्दोबस्त करते। होली जिस रातमें जलनेको होती उस रात घर-घर नाइन उबटन लगाती और उबटनके साथ शरीरका मैल जो छूटता उसे बटोरती जाती, मैलकी यह पोटली संवत्सरकी चितामें डाल दी जाती। तब जाकर गाँव-भर जुटता और संवत् फूँकनेका पचड़ा हर साल सामने आता। गाँवमें दो घर थे जिन्हें संवत् फूँकनेके लिए खेत मिले हुए थे, हर साल उनमें-से एककी पारी रहती, पर वह प्रायः घरसे बाहर भाग जाता, उसको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ढूँढकर लाना पड़ता, बड़ी गाली-गलौजके बाद वह मुखाग्नि देता और वह घास-फूस, कण्डे-लकड़ीका अम्बार धधक उठता। जिस गाँवकी संवत्‌की लपट जितने ऊँचे जाती उतनी ही उसकी प्रतिष्ठा होती। वह चिता तो जलकर राख हो जाती, पर राख ठण्डी होनेतक छुई नहीं जाती, कभी-कभी एक दिन एक रात तक वह आग पड़ी रहती, पर प्रायः दूसरे दिन ही वह राख झोलियोंमें भरकर हम लोग चल पड़ते, आबाल-वृद्ध प्रत्येक व्यक्तिको एक चुटकी राख देते और गली-गली उसे उड़ाते, उस चिता-भस्मको लगाकर उन्मादी फगुहरोंकी टोली झाँझ-मृदंग लिये निकल पड़ती। गाँवके हर एक घरकी परिक्रमा होती, केवल उन घरोंको छोड़ दिया जाता जिनके यहाँ कोई ग़मी पड़ी रहती। हर एक दरवाज़ेसे चलते समय यही फगुआ गाया जाता : "सदा अनन्द रहै एहि द्वारे मोहन खेलैं फाग !"

पता नहीं कबसे यह फगुआ गाया जाता है; कबसे द्वार-द्वार मोहन फाग खेलने आ रहे हैं; शिवशंकर गौरीके साथ चिता-भस्म और अबीर उड़ाने आ रहे हैं; एक संवत्सरकी चितापर दूसरे संवत्सरका बीज बोया जा रहा है; पार्थिव धूलिसे भरे हुए गगनमें रंगकी पिचकारियाँ चलायी जा रही हैं; अंग-अंगमें रंग और अलकोंमें अबीर भरे ललनाएँ अनंगको सांगोपांग करनेके लिए उमगती रही हैं; डफ-झाँझ और मृदंग इस आनन्दको उद्वेलित करते रहे हैं; आम्र-मंजरियोंका रस पी-पीकर सुरीले कण्ठ नयी-नयी तानोंको बिखेरते रहे हैं; प्रीतिकी रीति सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक सभी प्रकारकी कुण्ठाओं, मर्यादाओं और बाधाओंको नकार करके ऊँचे गले आजके दिन टेर लगाती रही है। हमारी पराधीनताकी बेड़ियाँ भी इस स्वच्छन्द आनन्दोत्सवमें टूट जाती थीं; वर्ग, जाति, कुलका गर्व खर्व हो जाता था; समरसताकी, मात्र समताकी नहीं, लहर दौड़ जाती थी; तन-मन-वचन रागके पारावारमें नहा उठता था। सुधारक अपनेको रज़ाइयोंमें लपेटकर कोठरियोंमें बन्द करते, अधिकारी दफ़ा १४४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगाते; पर उन्मुक्त आनन्द इन्हें भूल जाता, घर-घर प्रोषित-पतिकाएँ वासकसज्जा वनतीं, आधीरात तक क्या भोर तक जागरण होता और प्रात समय वह अनिन्द्य शोभा घर-घर कुलदेवताओंकी आँखें जुड़वाती—

"गोकुलमें गोपिन गोविन्द संग खेली फाग
राति-भर प्रात समय ऐसी छवि छलकैं।
देहैं भरी आलस कपोल रसरोरी भरे
नींद-भरे नयन कछूक झपैं झलकैं॥
लाली-भरे अधर वहाली-भरे मुखव्रर
कवि पदमाकर विलोके को न ललकैं।
भाग-भरे लाल और सुहाग-भरे सब अंग
पीक-भरी पलकैं अवीर-भरी अलकैं॥"

परन्तु सोचता हूँ शिवशम्भु शर्माकी चिन्ता भी जब दूर हो गयी तब यह आन्दोलन फीका क्यों हो गया? शहरोंकी बात मैं नहीं जानता—वहाँ अपने अफ़सरोंसे सफ़ेद कुरते पहन-पहन मिलने चपरासी तक पहुँच जाते हैं और डालडाका प्रसाद लेकर अत्यन्त तृप्त भावसे लौट आते हैं, एकाध हास्य-गोष्ठियाँ और सार्वजनिक मिलनके भी स्वाँग हो जाते हैं, बहुत जोश उफानपर आया तो कवि-सम्मेलन भी हो जाते हैं; पर उपचारकी छाप सर्वत्र रहती है, शिष्टताकी नक़ाव चेहरेपर कसी रहती है, अपनी सीमाओं-का वोझ कन्धेपर सवार रहता है, और समताकी वात कण्ठके बाहरसे ही निकलती है और कानके बाहर ही तक पहुँचती है, रंग-गुलाल और अवोर मनों लग जाते हैं पर मन नहीं रँग पाता। किन्तु अभी मैंने पिछले साल गाँवकी होली देखी थी—हुलास जैसे कलीकी तरह चिटकनेको आतुर, पर दक्षिण पवनके अनुकूल संस्पर्शके विना उसका सौरभ वन्दी है, पुराने तौर-तरीक़े ज़रूर वदल गये, पर नये तौर-तरीक़े कोई क़ायम नहीं हुए। कभी यही गाँवकी होली राजनैतिक चेतना जगानेकी साधन बनी, समता-का सन्देशा पहुँचानेके लिए फागका राग पवनदूत बना, और राजनैतिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चेतना तो जग गयी और समता भी क़ानून तो बन गयी, परन्तु होलीके आनन्दको काठ मार गया, क्योंकि पुराने देवता न सेरवाये (विसर्जित किये) गये न पूजे गये, त्रिशंकु बने लटके रहे, और नये देवता आकार नहीं ग्रहण कर पाये। मिट्टी सानी गयी, उसमें दूध डाला गया, पर मूर्ति खड़ी न हुई—गणेश क्या रुद्र तक नहीं बन पाये। शिव-पार्वतीमें तो सँवार चाहिए ही, फिर पत्थरके रोड़े डालकर मूर्ति गढ़नेका प्रयत्न हुआ : मूर्ति नहीं उभरी, नहीं उभरी; मन्त्रके बोल कुछ अटपटे थे या बीच-बीचमें स्वर-भंग हो जाता था, या पानी खारा था, या मन अनमना था—शिव न उभरे न उभरे।

गाँव-भरके जो काका थे, बाबा थे, उनका बड़प्पन ढह गया; निरहू पाण्डे जो कल शहरमें चपरासी हुआ था, गाँवका काका और बाबा बन गया। फागमण्डली बिखर गयी, क्योंकि बुधुआ चमारके मिडिल पास लड़केने बापको डफ बजानेसे मना कर दिया और मिरदंगी कतवारू पासीका लड़का एम्० एल्० ए० हो गया है, वह हाथमें मृदंग क्यों लेता! गाँवमें इसी बातपर ज़िच हो गयी कि अब फगुआ पुराने मुखियाके दरवाज़ेसे न शुरू होकर नये 'गाँवके प्रधान'के दरवाज़ेसे शुरू होगा। होलीके दिन भी दो पार्टी बनते देख पुराने फगुहरोंका दिल बैठ गया, इस साल फगुआ नहीं हुआ। संवत् फूँकनेकी रात भी अजीब घटना घटी। दोनों पाँड़े कुलोंने साफ़ इनकार कर दिया : ज़मीनके तो वे भूमिधर हो ही गये, अब संवत् 'फुँकाई'की ज़िम्मेवारीका सवाल कहाँ? अच्छा हुआ बाबा मेरे धरा-धाम छोड़ चुके हैं, नहीं तो गाली-गलौजपूर्वक इस झगड़ेकी समाधान करनेवाली उनकी आत्माको बहुत क्लेश होता! प्रकरण भी ऐसा अनैहलौकिक है कि गाँव पंचायत-क़ानूनके दायरेमें नहीं आता, परस्पर सौहार्दपर खड़ी पंचायती दीवाल तो ढह गयी; खड़े हाथोंके बलपर खड़ी की गयी दफ़्ती-की पंचसाला दीवाल क़ानूनपर कूदती है और क़ानूनसे ही डरती है, उसके भीतर ऐसे मामले कैसे आयें? बहरहाल होली हुई भी तो लगा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैसे न हुई हो। गाँवके सम्मानका प्रश्न था, गाँव-सभाके सेक्रेटरीने संवत्में चोरी-चुपके आग लगा दी, राख लकड़ीसे टाल-टूलकर पासके खेतमें डाल दी गयी, राख उड़ाना भी हो गया, मुन्शीजोके लड़के पिच्च-पिच्च पिचकारी भी चलाते रहे, गाँवके प्रधानने शामको होली-मिलनकी नोटिस घुमवा दी, घरपर आये दो-चार लोगोंको लौंग-सुपारी नज़र की, हौले-हौले माथेपर शरीफ़ाना ढंगसे रोली लगायी, गले मिले—होली आयी और गयी: लगा मसानमें आयी थी!

भ्रमरानन्दको चिन्ता बहुत कम सताती है, पर आज जबसे कहींसे कानोंमें उस फगुएकी धुन आयी तबसे उन्हें जैसे पीना साँप छू गया। नशा उखड़ गया। मनने उन्हें समझाया: मित्र, 'धर्मयुग'का यह रंगीन चित्र देखो, देशके ये महान् हितचिन्तक होलीमें रँगे हुए दिखाये गये हैं, अपनी आँखोंपर ही विश्वास न करो! पर भ्रमरानन्द तो विह्वल हैं, वे गा रहे हैं—

"सजनी हो मन मोर मनावै बसन्त न आवै।
फूलै हो फूल फरै जनि तरुवर राग फाग कोऊ गावै।"

उन्हें कैसे समझाया जाये कि मित्र, युग-सन्ध्या है, इसमें नये सिक्कोंकी पहचान बिना सारणी देखे नहीं होती, पुराने पैसोंको नये पैसोंमें बदलनेके लिए वह अखबार ढूँढके निकालना पड़ता है जिसे श्रीमतीजीने कामकी चीज़ समझकर अलग रखा है। तुम्हारे मोहन बुर्जुआ थे, शिवशंकर सिनिक थे: ये लोग नॉर्मल आदमी नहीं थे। आजकी नॉर्मल दुनियाको रीतिकालीन कवियों और रंगपाल, ईसुरी, छोटकुन, विद्यापति-जैसे लोक-गीतकारोंकी आँखोंसे क्यों देखते हो? तुम्हारा नवल बसन्त भी बुढ़ा चला, संवत्सरकी चिता-भस्ममें बीज डालनेवाला नववर्ष भी बहुत आगे खिसक आया, विक्रमको दबाकर शक चढ़ बैठा—तुम कहाँ सो रहे हो? अब अनंगको जगानेके लिए चौतालकी ज़रूरत नहीं, अबीर और बुक्केकी ज़रूरत नहीं, पिचकारीकी चोटकी भी ज़रूरत नहीं; हर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चौराहेपर अब एक पानकी दूकान है जिसमें मोहक पोज़ोंमें सितारिकाओंकी मोहक तसवीरें हैं, सीलोनपर अहर्निश लगा हुआ छोटा-सा रेडियो है, और 'जिया भरमाके चले नहिं जाना'का आकाशभेदी स्वर गूँज रहा है। अनंगको अब पुष्प-परागसे हाथ धुरियाकर आम्र-मंजरीके शर-सन्धान करनेका कष्ट नहीं उठाना है, फ्रॉएड अब सरे-बाज़ार सुपुप्त कामवृत्तियोंको जगानेका मन्त्र पढ़ा रहे हैं। गालियोंकी, कवीरोंकी और शिष्ट कण्ठ-पछाड़ गीतोंके अभिधात्मक प्रयोगकी ज़रूरत नहीं रही, साहित्यमें ही संकेतोंका बाज़ार गरम है; इन संकेतोंकी जो अचूक मार होती है वह अभिधामें कहाँ आ पाती? अब यथार्थ हाथ-पैर-सिरविहीन होकर ऊपरी धड़मात्र रह गया है जिसके कारण कामदेवको बहुत सुभीता है, उसे नयन-बाज़ीकी दुरूह और खतरनाक प्रक्रियाकी अपेक्षा नहीं रही।

भ्रमरानन्दको आप भावुक कह लें, पर उनकी चिन्ता कुछ उनकी निजी नहीं है। उनके आसपास 'दवारि' लगी हुई है—

"झूरिसे कौनै लये वन-बाग ऐ कौनै जु आँवनकी हरिआई।
कोइल काहे कराहति है वन कौनै चहूँ दिसि धूरि उड़ाई॥
कैसी 'नरेस' बयारि बहै यह कौन धौं कौन सौं माहुर नाई।
हाय न कोऊ तलास करै, ए पलासन कौनै दवारि लगाई॥"

किसने यह आग लगा दी कि भ्रमरानन्दके वन-बाग़ परतन्त्रताकी कुज्झटिकाके कटते ही अरुणिम प्रकाशमें खिलनेके बजाय दहक उठे। भ्रमरानन्द आज भी द्वार-द्वार "सदा अनन्द रहै एहि द्वारे"की टेर लगाना चाहते हैं, पर उन्हें संगी नहीं मिलते। लोग कहते हैं: पहले तुम बताओ तुमने किस छाप-बक्सेमें वोट डाला है? भ्रमरानन्द क्या करें, उनका मतदाता-सूचीमें नाम ही नहीं है! बीबीका नाम है भी तो शौहरका नाम कुछ दूसरा है, बेचारी शर्मके मारे जाकर भी बिना वोट डाले लौट आयी। अब जबतक अपना छाप नहीं बतलाते तबतक उन्हें साथी नहीं मिलते, दो-एक मनचले कुछ खिलाने-पिलानेपर तैयार भी हैं तो उनकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लय निराली है। वे कहते हैं: यह रेडियो-द्वारा स्वीकृत लय है, इसमें हलकी-हलकी कजलीकी धुन है। गँवार भ्रमरानन्द इनके साथ राग नहीं मिला पाते, साज नहीं मिला पाते। पर हौस वही है कि घर-घर आनन्द हो, पूरी हो चाहे न हो।

आखिर फागुनकी मस्ती कहाँ वह-बिला गयी? हमारा मन ऐसा सोंठ क्यों हो गया कि उसे फागुनकी लहक 'औरका-और' नहीं कर पाती? कहाँ तो बूढ़े बाबा भी इन दिनों देवर लगते थे और कहाँ देवर भी बिना उम्रके बूढ़ा होकर शराफ़तकी शिक्षा देने लगा? यह ऋतु-विपर्यय है या क्या है? हाइड्रोजन बमके प्रयोगोंका यह फल है या अन्तर्राष्ट्रिय राजनीतिके तनावके कारण जन-मनकी खिंची हुई स्नायुओंका करिश्मा है, या कच्ची उम्रमें विश्वकल्याण-चिन्तनके कारण उपजे हुए अकाल वैराग्यका यह परिणाम है कि निर्बन्ध आनन्दका वह सुनहला अवसर हाथमें आकर निकला जा रहा है। साज-बाज धरे हैं, मूठियाँ गुलालसे भरी हैं, पिचकारियाँ सधी हैं, पर चिन्ताओंको भस्मीभूत करनेवाली वह मस्ती और चिताकी भस्म चहुँदिसि बगरानेवाली वह झोली खो गयी है। माना आराम हराम है, यह भी माना कि भविष्य हमारे कन्धोंपर खड़ा है और अतीत दूरसे प्रणिपात-पूर्वक जुहार कर रहा है, बन्धुता हृदयसे उठकर मस्तिष्कके धरातलपर पहुँच गयी है, भावनामें पली हुई समता गला फाड़कर चिल्लाने लगी है, और आनन्द लोक-कल्याणकी 'झण्डीके लिए डण्डी' बन गया है; पर तो भी भ्रमरानन्दका बौराया मन यह माननेको तैयार नहीं कि उत्सवकी आवश्यकता नहीं, हुलासकी आवश्यकता नहीं, हुलासमें खोनेमें सार्थकता नहीं। आम अगर बौरायेगा तो भ्रमरानन्दको भी बौरानेका हक़ हासिल है, पलाशकी आँखें मदमें चढ़ेंगी तो भ्रमरानन्दको भी नशा करना आता है, दक्षिण पवनमें अगर तरुगण झीम सकते हैं तो भ्रमरानन्दका मूँड़ भी लोहेमें तो जड़ा नहीं है कि हिल भी नहीं सकता! किसके बापकी ताब है कि भ्रमरानन्दको उत्सव मनानेसे रोक सके। हम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घर-घरका आनन्द मनायेंगे और चाहे कोई हज़ार गाली दे, हमें तो घर-घर फगुआ गाये विना रोटी नहीं पचेगी। "हमें नीकी लगी सो करी हमने, तुम्हैं नीकी लगी न लगी तो भलै।" भ्रमरानन्द छबीले मोहनको इसीलिए तो न्योतना चाहता है कि उसका वड़ा गहरा रंग चढ़ता है—होलीके दिन हलका रंग नहीं चाहिए। इसपर दूसरा रंग चढ़ सके ऐसा भी नहीं चाहिए, रंग ऐसा हो जो चढ़ा ही रहे, जो पगा ही रहे और जिसमें व्यक्ति अपने-आप विश्वके श्यामल सौन्दर्य-प्रसारमें भींग उठे, क़ानूनकी डौंड़ी पिटे चाहे न पिटे, अपीलकी दुन्दुभि वजे चाहे न वजे, मनमें ही स्वतः वह हिलोर उठे जो अपनेको तो भरे ही अपने आस-पासका चराचर विश्व भी भर दे। वह आनन्द-वोध भी क्या जिससे स्वयं भी आदमी रीता रहे, उसका परिसर भी रीता वना रहे? जो गगनको आपूरित नहीं कर सकता वह गीत व्यर्थ है, जो मनको आपूरित नहीं कर सकता वह उत्सव व्यर्थ है। यह आपूरण विधि-निषेधके परे है, यह न आदेश देनेपर आता है न रोकनेपर रुक जाता है। यह तो जातीय प्रवाह है : जिस जातिकी रगोंमें खून चलता रहता है उसमें आपूरणके क्षण आये विना नहीं रहते। आनन्द और जन-कल्याण चिन्तन की विलास-सामग्री नहीं हैं, ये भावनाके ही प्रकृष्टतम विवर्त्त हैं और ये गतिशीलताके लिए प्रतिवन्धक नहीं प्रेरक हैं। जिस हिन्दू जातिने अनंगोत्सवकी कल्पना की, धूलिक्रोत्सवकी योजना वनायी, रंगोत्सवकी परम्परा चलायी, वह तपसे, संयमसे और चिन्तनसे सामाजिक मर्यादाका वास्तविक मूल्य भली भाँति जानती थी; पर वह लोक-धर्मोंको भी पहचानती थी और वसन्तको उसने लोकोत्सवोंके लिए उपयुक्त ऋतु जानकर खुली छूट दी थी। कलियोंके वन्धन जव प्रकृति खोल देती है तो सामान्य जीवनके नीरस क्रमकी शृंखला भी उस समय खोल देनी चाहिए। इन वन्धनोंसे मोक्ष दिलानेके लिए उन्होंने शिवको पृथ्वीके आँगनमें नाचते हुए उतारा, परब्रह्म को चूनरी पहनाकर और माथेमें वेंदी देकर गँवारिनोंके वीचमें उतारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिससे कि लोकानन्दकी तरंग ऊँचे ही उठती रहे, जिससे द्वेष धुलकर वहता रहे, परस्पर प्रेमका पारावार लोगोंको एक करता रहे। आज लोग समझते हैं कि हिन्दू जातिकी स्वभावगत प्रक्रिया भी केंचुलकी तरह हमेशा निकाल फेंकनेकी चीज़ है। नवीनताके उत्सवमें चिरनवीनोंके वल्कल हम उतार डालते हैं। वे नहीं जानते कि हिन्दूधर्म पोथी-धर्म नहीं है, पण्डित-धर्म भी नहीं है, वह लोक-द्वारा जीवित धर्म है, किसीकी दुखती रगको छुए विना आनन्दकी समरसता लाना ही उसका सबसे वड़ा पुरुषार्थ है, मोक्ष उसके लिए कोई जीवनसे विलग, पार्थिव जगत्से विलग और मानवीय कल्पनासे विलग पदार्थ नहीं है, वह सीमाओंके भीतर रहते हुए भी शिव-संकल्पके वलपर उन सीमाओंका दृढ़ नकार है और नकारमात्र होकर रहना भी वह नहीं जानता, वह 'पारावार पूरन अपार परब्रह्म राशि' के साथ एकाकार होनेकी प्रक्रिया भी है। इसीलिए वह प्रेमाश्रयी है, उसका विराग भी विषयसे है, विषयीसे नहीं। होली इस मोक्षका लौकिक अनुभावन है, इसीलिए वह जन-जनका उत्सव है, लोक इसमें खोकर ही अपनेको नया पाता है।

भ्रमरानन्दकी वात लोग हँसीमें चाहे उड़ा दें, पर वह अपनी टेकपर अड़े हुए हैं कि होली मनानी है तो उच्छल प्रीतिसे ही मनायेंगे, नहीं तो उस दिन चौगुनी मात्रा चढ़ाकर अलीगंजवालेके यहाँ पड़ रहेंगे।

सम्पादकजी, अगर दो-चार साथी ढूँढ सकें तो वड़ा उपकार होगा, भंगकी वचत होगी, भ्रमरानन्दके गलेका भूत भी उतरेगा और पड़ोसियोंके कानोंकी शामत होनेसे वचेगी। द्वार-द्वार आनन्द मनानेके उत्साहपर पानी न फिरे, इसलिए यह लेख अर्पित है।

आपका फगुआया मित्र
भ्रमरानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ड्योढ़े दर्जेका ख़ातिमा

सम्पादकजी,

जय प्रदर्शनी !

सम्पादकजी, पितृपक्षमें जैसे पितर तृप्त होते हैं, देवीपक्षमें देवी प्रसन्न होती हैं, पुरुषोत्तम मासमें शंकरजी उत्सव मनाते हैं, वैशाख-जेठमें नाऊ-पुरोहित-कहार-बजनिया-नचनियोंकी चटकती है, वैसे ही प्रदर्शनी-तिमाहीमें बिजलीके ठेकेदारों, कलाकारों, बढ़इयों, गवइयों और कवियोंकी चाँदी रहती है। लेख न भेजनेपर आप तो बहुत जल्दी नाराज़ हो जाते हैं, पर आप ही सोचिए कि मैं दिमाग़पच्ची करके लेख लिखने बैठूँ या प्रदर्शनी कवि-सम्मेलनोंमें चार-पाँच घराऊ क़िस्मके गीतोंकी बदौलत रुपये फट-कारूँ ! इन दिनों कमसे-कम आप लेखका तगादा न करते, पर आप तो अपनी 'सरस्वती'के कलेवरकी श्री-वृद्धिकी चिन्तामें चूर हैं। आपको यह सोचनेकी भी फ़ुरसत कहाँ कि भ्रमरानन्दको साँस नहीं मिल पा रही है। आज मैनपुरी, कल बलिया, परसों बिजनौर—नींद हराम हो गयी है। आपको अपने लेखकी पड़ी है, यहाँ हम अपनी दिग्विजयका हिसाब नहीं लगा पा रहे हैं। शैलजी आज़मगढ़में नहीं आये, लगता है कोई बड़ा डौल लग गया है। छैलजीको गोरखपुरवालोंने बुलाया और मुझे नहीं पूछा। जालौन और ग़ाज़ीपुर दोनों जगह एक ही दिन कवि-सम्मेलन है। दोनों जगहसे न्योता है, कहाँ जायें कहाँ न जायें ? सम्पादकजी, मैं इन्हीं परेशानियोंमें आजकल पड़ा हूँ, इसीसे एक-आध महीनेके लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

आज यह पत्र लिखनेका कारण यों उपस्थित हुआ कि आप जानते ही हैं कि ड्योढ़े दर्जेमें ही चलनेकी अपनी आदत है, यहाँतक कि यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नालायक़ दर्जा गिरकर दूसरा दर्जा कहलाया जाने लगा, पर अभ्यासवश अभी भी मुँहसे ड्योढ़ेका ही नाम निकलता है। सो मैंने वाराणसीमें टिकटघरकी खिड़कीके बाहरसे जब एक ड्योढ़ेका टिकट ग़ाज़ियाबादके लिए माँगा, तो टिकट बाबू हँसने लगा। उसने कहा आपको ड्योढ़े दर्जेके खत्म किये जानेकी बात नहीं मालूम? लीजिए यह दूसरे दर्जेका टिकट हाज़िर है। मैंने खिसियाकर जब टिकट उलटा-पलटा तो देखा कि उसपर ड्योढ़ा दर्जा ही छपा है। टिकटबाबूने अपने हाथसे दूसरा दर्जा रोमन अंकोंमें अंकित कर दिया है। मैं तब अलफ़ हुआ कि तब ड्योढ़ा क्यों यहाँ छपा है? उसने तपाकसे उत्तर दिया कि पहले छपे हुए टिकटोंको उपयोगमें न लाया जाये तो राष्ट्रिय सम्पत्तिका अपव्यय होगा। मैं हतप्रभ होकर ट्रेनकी ओर चला, देखा वही ड्योढ़ेवाला पुराना डब्बा है, वही सीट है और वैसे ही मुसाफ़िर हैं—पचास फ़ी सदी रेलवेके बाबू, पचीस फ़ी सदी रोज़गारी, पन्द्रह फ़ी सदी पहले दर्जेके भत्तेके अधिकारी सरकारी कर्मचारी, और दस फ़ी सदी हमारे जैसे कायर लोग जो तीसरे दर्जेवाले दंगलमें पिसनेके भयसे अपने टुटपुँजिहापनके कारण अपने ट्रंकपर बैठनेके लिए इस दर्जेकी शरण लेते हैं। तब लगा कि कोई घबरानेकी बात नहीं, अभी हमारा ड्योढ़ा ज़िन्दा है। पर उसी दिन जब बातों-बातोंमें एक सहयात्रीने बतलाया कि रेलवेमें धीरे-धीरे दूसरे दर्जेका बिलकुल लोप कर दिया जायेगा तो मुझे बहुत बड़ा आघात लगा कि क्या हमारा ठौर-ठिकाना अब न रहेगा? इसी प्रश्नके समाधानके लिए आपके पास यह चिट्ठी भेज रहा हूँ। आपको खबरें ठीक तरहसे मिलती हैं। आप ही बतलाइए कि ड्योढ़ेका दूसरेमें विलय हुआ, यहाँतक तो ग़नीमत है; पर अब क्या सचमुच ही रेलवेके डब्बोंसे इसका नामोनिशान मिट जायेगा?

मैं जानता हूँ कि आपको हमसे कोई सहानुभूति नहीं है, क्योंकि आप हमारे दर्जेमें कभी सफ़र नहीं करते। पर तो भी आप विद्वान् मनुष्य हैं, आप सही-सही सूचना देनेकी कृपा करेंगे कि यह ड्योढ़ा दर्जा जिसमें हर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक मुसाफ़िर अपना अलग व्यक्तित्व लिये, अलग-अलग बैठता रहा है, गुन-सुम और अपनेमें लीन, वह अब सर्वहाराकी चपेटमें जानेको विवश हो जायेगा? आप विश्वास मानिए, इस दर्जेमें बैठनेमें केवल एक सुख है: अपना निरालापन बचा रहता है। कोई यहाँ एक-दूसरेकी दुखती रगको नहीं छूता, सभी हवाई बातें करते हैं, अन्तर्राष्ट्रिय राजनीति और जीवनके उच्चतम आदर्शोंसे नीचे कोई बात नहीं करता, कलह भी होता है तो वाक्‌की सीमाके भीतर, हँसी भी होती है तो ओठके भीतर और लुका-छिपी प्रेम भी दर्शित होता है तो आँखोंके भीतर। शीलसे यह तचा हुआ दर्जा क्या सचमुच अब तीसरे दर्जेकी भेड़िया-धसानमें लाठी-गठरी और आदमीका धक्कम-धक्का सहनेके लिए मजबूर हो जायेगा? यह तो निश्चय है कि पहले दर्जेके निपट एकान्तमें हमारी गुज़र नहीं होगी, शायद हमारे पास इतना वेंवत (वित्त) भी न होगा कि हम उस दर्जेका ऐश भोग सकें। हमारे पास इतना आत्मदमन न होगा कि हम अपनी ज़बानपर ताला लगा सकें, और शायद हमारे पास उतना मिज़ाज भी न होगा कि हम उस दर्जेकी गम्भीरता वहन कर सकें। लाचार हमें उस दर्जेमें जाना ही होगा जहाँ घुसनेमें मार-पीट हो, निकलनेमें मार-पीट हो, बैठनेके लिए हुज्जत, लेटनेके लिए सज़ा और खड़े रहनेके लिए एतराज़ हो; जहाँ संघर्षमें ही स्वाद हो और आराममें ही कड़ुवापन हो; जहाँ भाषाकी कोई मर्यादा न हो, पदका कोई गौरव न हो, और व्यक्तिका कोई स्थान न हो।

मेरी बात जाने दीजिए। कुछ दर चढ़ा लूँगा। पर मेरे ये साथी भी तो हैं, जो रियायती टिकट लेकर इस दर्जेमें चलते रहे हैं और जिनकी आदत इस रियायतके निरन्तर उपयोगसे बिगड़ चुकी है—इनका क्या होगा? उन सिद्धान्तवादियोंकी क्या दशा होगी जो इस दर्जेमें बैठकर विश्व-भरकी आलोचना किया करते थे, जो अपने बुद्धि-बलके बूतेपर पहले दर्जेमें बैठनेवालोंको संकीर्ण और तीसरे दर्जेमें बैठनेवालोंको गँवार कहा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते थे ? सच तो यह है कि इण्टर अर्थात् ड्योढ़ेके मिटनेपर ही हमारे इस वर्गको बहुत तकलीफ़ हुई, कुछ तो इसलिए कि इसमें दूसरे दर्जेमें पहले चलनेवाले रोजगारी भी शरीक हो गये—वे रोज़गारी जिनका रोज़नामचा वर्षों तक चलता है, जो अपनी चलन चलाये ही चले जाते हैं और इसीसे जिन्होंने दूसरे दर्जेकी पदोन्नति होनेपर अपनेको इसी निचले दर्जेमें चिपकाये रखा। इस वर्गके शरीक होते ही खलबली मची कि ये तोंदवाले मक्खीचूस लोग कहाँसे हमारे बीच आ टपके ? इन्हें कविता, राजनीति किसीमें दिलचस्पी नहीं, ये 'बाज़ार भाव'से अधिक अखबार में कुछ पढ़ नहीं पाते। इनके साथ कैसे निभेगी ? पर धीरे-धीरे निभने लगी, रोज़गारी-वर्ग भी राजनीतिमें रस लेने लगा, कविताकी प्रशंसा करने लगा, और समझौतेकी गाड़ी चल पड़ी। किन्तु अब यह वज्रपात ! हम लोग जो सबसे अधिक असंगठित और एक दूसरेसे पृथक् रहते हुए कायरता, साधनहीनता और बुद्धिवादिताके समान स्तरपर एकत्र रहे हैं, किस प्रकार एक विशाल जीते-जागते लट्ठबाज़ समूहके भीतर प्रवेश पायें ? हम एक-दूसरेको मदद देनेमें संकोच करते हैं। एक-दूसरेसे मदद लेनेमें संकोच करते हैं, एक-दूसरेके जीवनको छूनेमें संकोच करते हैं, और एक-दूसरेसे अपना घर-द्वार बतानेमें संकोच करते हैं। और उस भीड़में बिना लड़े प्रवेश नहीं, प्रवेश होते ही चारों ओरसे पूछ-ताछ कि तुम्हारा घर किस गाँवमें है, तुम्हारी ननिहाल कहाँ है, तुम्हारी ससुराल कहाँ है, तुम्हें कहाँ जाना है ? फिर अपना वैसा ही प्रगाढ़ परिचय, खुली तबीयतसे लड़ाई, खुली तबीयतसे मेल और सलाम-मोजरा करके बिदाई ! बड़ा अजीब-सा वातावरण है।

मान लीजिए मैं अकेले हूँ तो इस पामर दर्जेमें चला भी जाऊँ और दुबककर एक कोनेमें बैठा रहूँ, घुटता रहूँ और सबकी नज़रोंसे मानो बचाकर उतर पड़ूँ। पर अगर मेरे साथ बीबी-बच्चे हुए तो आप ही बताइए इस भीड़में उनको लेकर कैसे चलूँ ? बड़ी मुश्किल है, सम्पादकजी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं ड्योढ़े दर्जेके लोपपर उतना दुःखी नहीं हूँ जितना दूसरे दर्जेके सम्भावित लोपपर। बड़े लोगोंका काइयाँपन देखिए कि उन्होंने अपना बड़प्पन वातानुकूलित (एयर-कण्डीशण्ड) डब्बोंकी सृष्टिके द्वारा सुरक्षित कर लिया, दूसरा दर्जा पहला होकर भी पहला न रहा। पर ड्योढ़ा बेचारा किससे फ़रियाद करे? इसी ड्योढ़ेमें जो ज़माने तक चलते रहे, उन्होंने ही यह क़ानून बनाया कि ड्योढ़ा नहीं रहेगा। इससे बढ़कर इसके लिए विडम्बनाकी बात क्या होगी? सच तो यह है कि हम अपने दर्जेके प्रति वफ़ादार नहीं है। हम सुविधा पाते ही अपने दर्जेको भूल जाते हैं और इसे बाबुओंका दर्जा कहने लगते हैं। सुविधा जाते ही पुनः इसके पथिक हो जाते हैं, और तब इसे बुद्धिजीवियोंका दर्जा कहने लगते हैं। तीसरे दर्जेमें चलनेवाला आदमी पैसे कमाकर भी उसीमें चलता रहता है, उसका रुतबा इस दर्जेमें चढ़नेसे नहीं घट जाता। पर हम हैं कि ऊँचे दर्जेका लोभ संवरण नहीं करते, चाहे वह लोभ कितना भी अस्थायी क्यों न हो!

और तो और, मेरी ही बात लीजिए। मैं कवि हूँ। किसानों, मज़दूरोंके स्वत्वोंका ठेकेदार, अफ़सरों और सेठोंकी मजलिसोंका शृंगार, राजनीतिकी नौकाका कर्णधार, युगका सन्देशवाहक और समयकी शिलापर अमिट तथा गहरी लकीर। मेरी ही वफ़ादारी कितनी है अपने वर्गके प्रति? आज मुझे तीसरे दर्जेमें चढ़नेकी कल्पना भी दुःसह लग रही है, पर मैंने ही तो यह आग लगायी थी कि वर्ग-भेद उठ जाये। अब देखता हूँ कि वर्ग-भेद उठनेके नामपर केवल मेरा वर्ग, जिसे मैंने अपना नहीं माना, उठ गया। और वर्ग तो जैसेके-तैसे बने रहे, उनको जोड़नेवाला मेरा वर्ग उठ गया। उनके बीच खाई और चौड़ी हो गयी। अब पहला, दूसरा, ड्योढ़ा, तीसरा न रहकर ऊपरी और नीचला, ये दो विभाजन रह गये। पुरानी वर्ण-व्यवस्था तो मिट गयी, पर नयी रचना खड़ी हो गयी। शासक-शासित दो अलग डब्बे हो गये। पहले तो यह था कि कभी ससुर तीसरे दर्जेमें चलते थे तो कभी दामाद ड्योढ़ेमें। आज जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ससुर ऊपरवाले दर्जेमें चलेगा तो उसका दामाद भी उसी दर्जेमें चलेगा। अगर नहीं चलेगा तो वह दामाद नहीं रह पायेगा। बेटीके लिए दूसरा दामाद ढूंढा जायेगा। पहले बाप पहले या दूसरे दर्जेमें और बेटा नौकर-वाले दर्जेमें एक साथ चल सकते थे, प र अब पहले दर्जेमें चलनेवाला बेटा तीसरे दर्जेमें मुसाफ़िर बापको अपना बाप नहीं कहेगा। कारण यह कि अब केवल दो दर्जे हैं : एक गद्दीदार और दूसरा काठीवाल। एक भीतरसे बन्द होनेवाला और दूसरा बाहरसे खुलनेवाला। एक छड़दार दोहरी-तिहरी खिड़कियोंसे सुरक्षित और दूसरा उन्मुक्त। एकमें शय्या-प्रकाश, रात्रि-प्रकाश और प्रकोष्ठ-प्रकाश : तीन-तीन प्रकारके प्रकाश जलते और बुझते रहते हैं; दूसरेमें एक-सा प्रकाश या अन्धकार बना रहता है। एकमें सीमित प्रवेश, दूसरेमें बे-रोकटोक घुसनेकी अबाधता। इन दोनोंके बीच जो था वह बेचारा अब अन्तिम साँस ले रहा है। यही सामाजिक न्याय की सहज परिणति है।

सम्पादकजी, आप सोचते होंगे कि भ्रमरानन्दने आज गहरी विजया छानी है, तभी वह यह अकाल रुदन कर रहा है। पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस समय तो नशा हिरन हो गया है। ये प्रदर्शनियाँ वसन्त आते-आते समाप्त हो जायेंगी। चुनावरूपी अनंग शरसन्धान करनेवाला है। रंग-बिरंगी झण्डियाँ खिलनेवाली हैं; पन्द्रह फ़ी सदीके कोटाके अयाचित वरदानके फलस्वरूप नयी-नयी कलियाँ चिटकनेवाली हैं। नव-वसन्तमें नये बन्दीजनोंकी कूकपर नये-नये गुल खिलनेवाले हैं। यह नया अनंग असंख्य मोटरोंकी धूलिसे अपने हाथ धुरिया-धुरियाकर नये निशानोंपर तीर बिठलानेवाला है। कबीरके आलापोंके नये संस्करण होनेवाले हैं। भ्रमरानन्दके कविताजीवी वर्गके लिए इस धमाचौकड़ीमें कोई स्थान नहीं। चुनावके मदनज्वरकी समाप्तिके बाद जब गर्द बैठ जायेगी तब भी हमें कोई पूछनेवाला न होगा। लोग अपना ही लेखा-जोखा ले रहे होंगे। उस समयकी बात सोचकर मैं चिन्तित हूँ कि इस ड्योढ़े दर्जेके दिवास्वप्निल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यात्रियोंका क्या होगा ? इस जाड़ेकी कवि-सम्मेलनी वहारकी जलेवियोंसे मोटाये शरीरका क्या होगा, जब उसे गरमियोंमें भूले-भटके किसीकी बारातमें शुभ-कामनाके गीत पढ़नेके लिए बुलाया जायेगा और तीसरे दर्जेकी भयंकर भीड़ उसकी सहचरी होगी ? पहले दर्जेकी ओर ये सतृष्ण नयन और वे बुद्धिजीवी जो लालसाकी प्रतिहिंसामें अभिजात, शोषक, शासक, सुविधाप्राप्त, पूँजीपति, सत्ताधीश आदिके प्रति गालियोंकी बौछार, और शोषित, उत्पीड़ित, निर्धन किसान-मज़दूरके प्रति करुणाके उमड़ावसे अपनी जलन बुझाते रहते हैं, कहाँ जायेंगे ? सत्ताधीशोंका वर्ग इतना मूर्ख नहीं है जो इन्हें अपने साथ बिठलायेगा, और सर्वहारा वर्ग ऐसा अब सोया नहीं है कि इनको अपने नायकके रूपमें ग्रहण कर ले। अधिकसे-अधिक वह अपनी अनुकम्पाका आश्रित-मात्र बनानेको प्रस्तुत होगा। वह भी तब जब ये लोग अपने लिए लड़कर भीतर पैठनेका रास्ता बना लेंगे।

सम्पादकजी, अंकगणितके हिसावसे दूसरेका बाप पहला था और तीसरेका ड्योढ़ा, पर ड्योढ़ेका बाप तो केवल हवाई जहाज़की यात्रा हो सकती थी। अब तो तीसरा दर्जा भी (नालायक़ चाहे खुद न समझे) बिना बापका हो गया, और हवाई सैरका दर्जा भी बिना पूतका रह गया। कल्पना-विलासका पार्थिव आनन्द अब जाता रहा। इसी दुश्चिन्तामें पड़ा हुआ हूँ कि विश्व अपने-आप जो बढ़ा जा रहा है और हम उसकी नकेल थामनेवाले हाथमें-से नकेल छूट जानेके कारण निरवलम्ब होकर शून्यमें विलीन हो रहे हैं, उनको भी तारनेवाली, उबारनेवाली क्या कोई शक्ति अवतरित होगी ? आप रायबहादुर आदमी हैं, आजकल रायदानकी बड़ी महिमा है : सो आप कृपा करके मुझे और मुझ-जैसे न जाने कितने इसी प्रकार चिन्तामग्न ड्योढ़ेवालोंको तारक-मन्त्र दें, आप सुयशके भागी होंगे। पर दयानिधान, मैं राय दानके रूपमें माँग रहा हूँ, कहीं आप फ़ीसके तौरपर नगद लेख न माँगने लगें ! इसलिए यदि निःशुल्क राय देना आपको स्वीकार न हो तो चिट्ठीकी प्राप्तिकी सूचना-भर दे दीजिएगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझे तसल्ली मिल जायेगी कि अमरानन्दकी चिन्ता एक रायबहादुर सम्पादक तक तो पहुँच गयी।

और तो आनन्द ही है। हाँ, दालदाकी पूरियों और मिठाइयोंके कारण गलेमें कुछ खराश है। इससे एक प्रोग्राम कट गया, और काव्यानन्दसे विश्राम लेते ही यह दुष्ट चिन्ता सिरपर सवार हुई। अब इसे इस चिट्ठीमें उतारकर आपके पास भेज दे रहा हूँ। मुझे अब जाकर फ़ैज़ाबादकी ट्रेन पकड़नी है। वहाँ कल कवि-सम्मेलन है। अतः सम्पादकजी, मेरी 'जय प्रदर्शनी' स्वीकार करें!

भवदीय
अमरानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डेरी बनाम खेती

सम्पादकजी,

जय डेरी फ़ार्म !

आप भी क्या कहेंगे, भ्रमरानन्दजीने डेरी खोलनेका शुभ संकल्प किया है ! ईश्वर चाहेगा तो अब आपको उनकी अगली चिट्ठी 'भ्रमरानन्द डेरी फ़ार्म'से ही मिलेगी। आपको आश्चर्य होगा कि डेरीकी भावना भँगेड़ी भ्रमरानन्दको आयी कैसे; पर आप नहीं जानते कि लखनऊमें एक आठवें आश्चर्य रहते हैं, उनका नाम है श्री विनोद शर्मा। उनके यहाँ कभी-कभी कल्पनाकी बड़ी ऊँची-ऊँची लहरें उठती रहती हैं, एकाध चन्द्राक्रान्त चण्डूल आ गये तो ज्वार भी आ जाता है। एक दिनकी बात है वहाँ तीन-तीन पतंगबाज़ जुट गये। बात यों शुरू हुई कि देशका कल्याण खेतीमें है। उद्योग तो सरकारका धन्धा है, परन्तु खेती जन-जनकी सम्पदा है। इतनेमें एक मिसुरजी बोल उठे,"कहाँकी बात करते हैं, खेतीसे बढ़कर जहालतकी चीज़ कोई दुनियामें हो भी सकती है ? बैल रखो तो बैलोंके साथ खुद बैल बनो, उनकी सानी-पानीमें ही अपने प्राणोंकी साँसत करो; ट्रैक्टर रखो तो मशीन ही है, एक दिन बौरा जाये तो जानपर आ बने ! अमुक प्रोफ़ेसरने खेतीका अंजाम बाँधा, ट्रैक्टर ख़रीदा। एक दिन ट्रैक्टर बिगड़ गया, वे बेचारे पैरोंसे महरूम हो गये। फिर बुवाई है, खाद डलाई है, कमाई है, निराई है, रखवाली है; काटनेपर भी काम नहीं पूरा होता; दँवाई, ओसाई और भूसा-अनाजकी अलग-अलग रखाई—सौ झंझटें हैं। दम लेनेको भी चैन नहीं। नौकर इतने सरकश कि उनके भरोसे रहें तो बीज तक न निकले। फिर खेतीमें हर एक चीज़का अलग-अलग ताव, जैसे कड़ाहीमें पूरी कचौड़ीका अलग-अलग ताव होता है। जोतनेका ताव,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वोनेका ताव, सींचनेका ताव—विना तावके कोई काम नहीं होता। ताव तक ही हो तो ग़नीमत है, चाशनीकी तरह हर एक फ़सलका सुतार-कुतार होता है। आर्द्रा नहीं वरसी : ख़रीफ़का कुतार हो गया; मघा नहीं वरसी : अगहनीका तार विगड़ गया; हथिया नहीं वरसी : रवीका सुतार नहीं रहा—थर्मामीटर और वैरोमीटर साल-भर लिये रहिए ! कहीं हमारे इलाक़ेकी तरह जंगलका पड़ोस रहा तो वनैले सुअरों और हिरनोंके लिए रात-भर वन्दूक़ लेकर पहरा दीजिए। उसपर भी सूखा-पानी, रोग-व्याधि और ईति-भीतिसे अगर किसी तरह वच-वचाकर फ़सल तैयार हुई तो अकेले जीवकी सौ-सौ साँसत—कभी नाई, कभी धोवी, कभी कहार, कभी लुहार, कभी वढ़ई, कभी मथुराके पण्डा, कभी प्रयागके पण्डा, कभी गयाके पण्डा, कभी जोगी, कभी साईं, कभी वेड़नी, कभी नट, अपना वार्षिक कर वसूलने पहुँच जाते हैं। इन सवके ऊपर है कृपि आय-कर (ए० आई० टी०) जो हमेशा अनकूत रहता है। इसके वाद गाँव-सभा और नियोजन समितिके चन्दोंकी वारी आती है। अव वताइए खेती करे तो कौन भकुआ करे ! जिसके हाथ-पैर न चलते हों वही करे; नहीं तो जानका ज़वाल जिसे मुफ़्तमें मोल लेना हो वह इस पचड़ेमें पड़े।"

मिसुरजीके व्याख्यानकी विना समझे-वूझे पुष्टि करते हुए एक वावाजी जो तवतक किसी दूसरे आनन्द-लोकमें विचरण कर रहे थे वावा लहजेमें वोले, "विलकुल ठीक, एकसौ-एक नये-पैसे ठीक, खेतीमें जूनपर भोजन नहीं मिलता और वड़ा खटना पड़ता है, फिर प्रेमसे भगवद्भजनके लिए भी चार घण्टे नहीं मिलते। रमना-घूमना तो सपना हो जाता है। भगवान्को भोग भी रूखा-सूखा मिलने लगता है। रस तो है ही नहीं खेतीमें। हमारी शुभ सम्मतिमें 'उत्तम खेती मध्यम वानि' कहनेवाला कोई भँड़ुआ ही रहा होगा जिसने खेतीकी सपनेमें भी कभी शक्ल न देखी होगी। उत्तम तो नारायण नारायण वस यह वावागिरी है ! संसारका समस्त सुख वावाके चरणोंमें आकर लोटता है।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भ्रमरानन्द तो आप जानते ही हैं कि यथार्थवादी ही नहीं अतियथार्थवादी हैं, उन्होंने टोक ही तो दिया कि अब समाजवादी व्यवस्थामें बाबागिरीका डौल नहीं लगेगा, कोई दूसरा धन्धा सुझाइए। भ्रमरानन्दको ही देखिए, वीतराग हैं, एकाध चिट्ठी-चौपाती यदा-कदा लिख देते हैं, पर मॉडर्नतम रूपमें भी बाबागिरी चला नहीं पाते। अलख तो सब जगह जगा आते हैं पर चुटकी अब कहीं-कहीं ही मिलती है। एकाध साईंबाज़ अर्थात् अन्तरके विवेकके प्रति निश्शेष भावसे समर्पित भक्त तो उस चुटकीमें फिटकिरीकी बुकनी मिला देते हैं। सारा रस विरस हो जाता है। बाबागिरीके धन्धेमें बड़ा तगड़ा कम्पटीशन है। अनेक सम्प्रदाय बन गये हैं, अनेक मठ स्थापित हो गये हैं, गली-गली विहार खुल गये हैं। अब बाबा समूहका नहीं व्यक्तिका बाना है, इसलिए अब बाबागिरी साइड बिज़िनेस (अर्थात् मुख्य जीविका न होकर उपजीविका) बन गयी है। इससे केवल मान-मर्यादा-भर बनती है, क्योंकि इस देशके मज्जागत संस्कारमें बाबा है। आजकल साहित्यिक बाबागिरीकी सबसे अधिक प्रतिष्ठा है, बशर्ते कि यह बाबागिरी हो साइड-बिज़िनेस ही, नहीं तो पूँजी टूटनेका भी डर है। अब प्रश्न यह है कि बाबागिरीके साथ कौन-सा धन्धा प्रेमसे चल सकता है। मिसुरजी बोलें कि इतनेमें ही बाबाजी बोल उठे, "भाई डेरी कैसी रहेगी ?"। मिसुरजी उछल पड़े, "बस बस डेरी है एक धन्धा, जिसमें मज़ा ही मज़ा है! किसीके बापका बीज नहीं लेना, किसीको टैक्स नहीं देना, सुबह पाव-आधपाव नवनीतकी टिकिया, शामको आधेक सेर मलाई! चौबीस-चौबीस सेरसे कम दूध देनेवाली गाय-भैंस रखे न।"

बाबाजीने कहा, "डेरीकी महिमा बड़ी पुरानी है क्योंकि 'गोरस बेंचै हरि मिलैं,' अनाज बेंचनेपर तो हलधर ही मिलेंगे और बहुत रीझे तो मूसर थमा देंगे। इसीलिए प्राचीन कालमें बाबा लोग अपनेको गोस्वामी भी कहते आये हैं। गोस्वामी तुलसीदासको डेरीका बड़ा बारीक ज्ञान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था। उत्तरकाण्डमें तो दूध दुहनेसे लेकर घी मथने तककी प्रत्येक क्रियाका उन्होंने ऐसा सटीक वर्णन किया है कि बीचमें ही 'तव मथि काढ़ि लेइ नवनीता' तक पहुँचते-पहुँचते मन विचलायमान हो उठता है। भ्रमरानन्दने रसभंग करते हुए प्रश्न किया कि गोरसका आस्वादन तो ठीक है, पर ये गायें और भैंसें खायेंगी क्या, इन्हें खिलायेगा कौन? मिसुरजी तो कल्पनालोकमें पहुँच ही चुके थे, बोले, "तीस-चालीस बीघे खेतमें चरी बो देंगे, दो प्रतापगढ़ी नौकर रख देंगे। रोज़का-रोज दूध-घी बिकता जायेगा, नक़द आमदनी होगी।"

इतनेमें एक सज्जन और बैठे थे, उन्होंने शंका प्रकट की, "जिस खेतमें चरी बोयी जायेगी वह क्या जोता नहीं जायेगा, और क्या वे नौकर खेतीके लिए नहीं मिलते?"

मिसुरजी इस प्रश्नके लिए तैयार न थे, लिहाज़ा भ्रमरानन्दको इसका समाधान करना पड़ा, "आप भी किस भौतिक धरातलपर बात कर रहे हैं, यहाँ तो साहित्यिक स्तरपर बात हो रही है। प्रश्न यह है कि साहित्यकार खेतिहर वृत्ति अपनाकर अपनी धरतीके कल्चरमें लगे या गोपाल-वृत्ति अपनाकर गोरस-कल्चरमें लगे। सो बिलकुल स्पष्ट है, खेतिहर-वृत्ति निश्चय ही गँवारू है, उसमें माटी-पानीमें सनना है, नदी, बादल, सूर्य, चन्द्रमा न जाने किसका-किसका मुँह जोहना है। उसपर भी यदि बीज धरतीके अनुरूप न हुआ, यदि कमाई न हुई और यदि रखवाली न हुई तो खलिहान तक डाँठ पहुँचनेकी नौबत नहीं आती। घरमें अनाज आ भी जाये तो साझीदार अनेक हैं, अकेले भोग करना खेतिहर धर्मके विरुद्ध है। उसी तरह परम्पराको आगे बढ़ानेवाला साहित्य बड़े घाटेका धन्धा है। मौज तो बस डेरीमें है, चाहे मिसुरजीकी गाय-भैंस की डेरी हो चाहे साहित्यिक डेरी हो। मज़ेमें दो-चार गाय-भैंस पाल ले, ज़रा आधुनिक वैज्ञानिक तरीक़ेसे उन्हें रखे, कृत्रिम गर्भाधान और नस्ल-बदलौवलपर विशेष ध्यान रखे, तराज़ूसे तौलकर ख़ूराक दे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किताव पढ़-पढ़कर दूध दुहे, क्रीम निकाले, पनीर बनाये और सुरक्षित डब्बोंमें वन्द करके बेचने भेजे। ज़रा सलीक़ेदार नौकर रखे जो साइकिलपर लेकर इन्हें शहर बेंच आये, शुरू-शुरूमें कुछ सम्भ्रान्त घरोंसे सम्पर्क रखे। वस रोज़गार चल जायेगा। इसके साथ वावागिरी भी चल सकती है, वंशी वजाकर छाछके लोभमें आस-पासके छोकरोंको जुटाया जा सकता है और उन्हें अपना मुरीद बनाया जा सकता है। यह ज़रूर है काम ज़रा साफ़-सुथरे ढंगपर हो; और चरी बोनेकी ज़रूरत नहीं, चारा मोल मिल सकता है; वहुत दिनों तक नौकर रखनेको भी ज़रूरत नहीं, चेले-चापड़ ही तैयार हो जायेंगे, केवल मशीनका इन्तज़ाम चौकस हो। हाँ एक वात है, नौकर प्रतापगढ़ी न रखे, इलाहावादी रखे या फिर पंजावी रखे, नैनी डेरीसे निकाले हुए नौकर वड़ी आसानीसे इलाहावादमें मिल सकते हैं। वैसे पंजावी बड़ा अनुभवी होता है, वह धूलिमें-से हीरा उपजा लेता है, और यदि कहीं वढ़िया सहायक मिल जाये तो मणि-कांचन योग समझिए। तव तो सारी डेरीका भार गायों-भैंसोंके विसुक जानेके वाद, साल-छह महीनेके लिए उसीपर छोड़ा जा सकता है और उनके व्याने तक विदेश-यात्राके कार्यक्रम भी बनाये जा सकते हैं।"

सम्पादकजी, भ्रमरानन्दके इस व्याख्यानसे मिसुरजी और वावाजीको पता नहीं सन्तोष हुआ कि नहीं, परन्तु श्री विनोद शर्मा तो वहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने भ्रमरानन्दको न केवल डेरी खोलनेकी सलाह दी, वल्कि स्वयं उस डेरीमें साझीदार होनेके लिए वे तैयार हुए। सो उनके पास श्री विनोद शर्मा अभिनन्दन ग्रन्थका वहुमूल्य स्टॉक पड़ा ही हुआ है, उसीको वन्धक रखकर डेरीकी पूँजी आयेगी और अगले महीने आपको जो भ्रमरानन्दकी चिट्ठी मिलेगी वह गोरसमें सनी हुई। भ्रमरानन्दका संकल्प है कि अमेरिकी पशु खरीदें और प्रजननका रूसी तरीक़ा अपनायें : अन्तर्राष्ट्रिय शान्तिका पथ भी प्रशस्त होगा और समृद्धि तथा प्रजननका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुन्दर समन्वय भी होगा। भ्रमरानन्दको एक टेक्निकल सलाहकार मिल गये हैं, उन्होंने प्रति तीसरे वर्ष एक कलोर बछियाके मानदेय (ऑनरेरियम) पर समय-समयपर परामर्श देते रहनेका क़रार कर लिया है। वैसे वे हैं पत्रकार, पर पशुओंसे उनकी बहुत अच्छी बनती है। वे गउओंके तो अन्तर्यामी हैं। साथ-ही-साथ जो पहले नवनीतकी ढेरी निकले, उसे समस्त साहित्यिक बाबाओंको 'रसास्वादनार्थ'का लेव्ल लगाकर भेज दूँगा। विज्ञापनके लिए 'सरस्वती'की सेवाएँ आपकी दयासे सुलभ हो ही जायेंगी। हाँ, सोम शर्माके बापकी तरह एक चिन्ता उन्हें ज़रूर है कि माखनचोर-प्रूफ़ डब्बे कहाँ बनवाये जायें। सम्पादकजी, आप बड़े मुतफ़न्नी आदमी हैं, क्या कुछ सुझाव देंगे ? बड़ा उपकार होगा। विश्वास रखें, आपके पास हर महीने क्रीमरोल भेजता रहूँगा, भंगके साथ क्रीमकी जुज़ बहुत बढ़िया होती है : उसी प्रकार जिस प्रकार बाबागिरीके साथ डेरीकी या वंशीके साथ रासकी।

सम्पादकजी, यह चिट्ठी ज़रा लम्बी हो गयी, पर डेरीकी कल्पनासे दिमाग़ कुछ चटक गया है, अतः क्षमा करेंगे।

आपका डेरीग्रस्त बन्धु
भ्रमरानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नर-नारायण

सम्पादकजी,

आपने सोचा होगा कि भ्रमरानन्द डेरी फ़ार्म खोलकर सचमुच गोपालनन्दन ही बन गया। सो बात नहीं है। वास्तवमें चिट्ठी-चोपाती लिखनेका अब मन नहीं रहा। कारण बहुत स्पष्ट है। डेरी तो चली नहीं, गो-सदनमें ज़रूर चला आया। 'पीतोदक जग्धतृण' और ठण्ठ गउओंकी सेवामें दिन बड़ी नीरसतासे कटते हैं। सुना है कि कुछ चीज़ोंके अन्तमें वैराग्य हो जाता है। पर यहाँ आकर लगता है कि कुछ चीज़ोंके आदिमें ही वैराग्य होता है। मसलन्, इस मुदर्रिसगिरीको ही लीजिए। बड़ी धर्ममति जगती है। सो मन बड़ा विरक्त हो रहा है। एक दिन माँने बदरीनाथ जानेकी चर्चा की। उस दिन यह वैराग्य और तीव्र हो गया, साथ ही आपके ऊपर बड़ी खीज आयी। आपने पिछले जून-जुलाईमें ऐसा गड़बड़झाला किया कि भ्रमरानन्दकी बदरीनाथ-यात्राकी तैयारी धरीकी धरी रह गयी। आप जानते नहीं बद्रीनाथकी यात्राके लिए मनमें कितनी तीव्र उत्कण्ठा है। यह चिट्ठी लिखने बैठा हूँ तो मन उन्हीं बातोंसे भरा हुआ है। कौन जाने, आपको मेरी यह चिट्ठी निरी बकवास ही लगे क्योंकि इसकी भाषा आजके भारतके लिए शायद अनचीन्ही लगे। बहरहाल मन नहीं मान रहा है, इसलिए आपको इस बकवासको पढ़नेकी तकलीफ़ गवारा करनी ही होगी। सो आप 'बोर' होनेके लिए तैयार हो जायें।

बात कुछ पुरानी है, पर जिस जगहकी बात है उस जगहसे लगाव बहुत ताज़ा है। तीन-चार वर्ष पूर्व मैं जहाँ रह रहा था उस मकानके सामने ही एक 'रक्षित' वन था। 'रक्षित' इस अर्थमें नहीं कि उसके लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वन-विभागने 'रक्षित' करनेका गज़ट किया था, वल्कि इसलिए कि उस भूखण्डके स्वामीने अपने प्रभुत्वको प्रमाणित करनेके लिए उसे रक्षित रख छोड़ा था। इस वनकी कैफ़ियत यह थी कि दो वदरी (वेर)के वृक्ष (जिनकी अव केवल जड़मात्र वच रही है), दो ववूलके वृक्ष, दो नीमके वृक्ष, एक करंजा, एक शरीफ़ा, वेशुमार अँडूसे, मदार और धतूर, कौआ-जाउर और न जाने और कितने अनाम पौधे और फल। ग़रज़ यह कि तिलमात्र भी ज़मीन खाली नहीं। इन सवकी पृष्ठभूमिमें एक छोटी-सी कोठरी, जिसमें गायें आकर दुपहरी विताती थीं और जिसको साबित ख़ड़ी देखनेके लिए उस कोठरीके अधिष्ठाता ब्राह्मण देवता हफ़्तेमें एक दिन दर्शन देने चले आते थे। जव वदरीके वृक्ष कटवाये गये, तव मैंने कुछ आपत्ति की हो, सो वात नहीं, यद्यपि वदरीकी डालें हमारे घरकी मुँडेरीपर लटक आयी थीं और उनकी फलावनमित डालोंपर ढेलेबाज़ीके दैनन्दिन कार्यक्रमसे कभी-कभी वहुत खीज भी होती थी। पर जब वदरीमें फूल-फल आते (और वे मनों आते), तो मेरी धर्मभीरु पत्नीको इन डालोंके काटनेपर गहरी आपत्ति होती। और जब वदरी अधिपति उनसे पूछते भी कि 'क्या बेरके पेड़ कटवा डालूँ', तो वे मना कर देतीं। शायद उनकी हरियालीके सहज वोधको यह अत्याचार गवारा नहीं हो सकता था, या शायद फलोंसे लदी डालको सफल नारीत्वका प्रतीक मानकर उनका साकांक्ष नारी-हृदय उसके विच्छिन्न होनेकी कल्पनासे कातर हो उठता था। सो उन्हींके कारण वदरीके दोनों वृक्ष फैलते रहे और हमारी छतको घेरते रहे। श्रीमतीजी मायके गयीं, और एक दिन वदरोके दोनों वृक्ष धराशायी हो गये, (शायद उनकी लकड़ीकी ज़रूरत मालिकको पड़ी हो) और मेरे मकानका पूर्वी परिपार्श्व मानो सूना हो गया।

जवतक ये दोनों कण्टकाकीर्ण द्रुम अपनी बाँहोंमें मेरे घरकी मुँड़ेर वाँधे रहे, तबतक तो मुझे उनके अस्तित्वका कोई विशेष भान नहीं हुआ, पर उनके कट जानेपर उनकी सार्थकता बार-बार स्मृतिको ठेस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मारने लगी। इन वृक्षोंको देखकर मेरे मनमें यदा-कदा भगवान् बादरायण और उनके बदरी-आश्रमकी सुधि आ जाती थी, साथ ही उस बदरिकाश्रमके अधिष्ठाता नर-नारायणके प्रति प्रणति-भावना उमग आती थी। पर नरके एक आघातने नारायणकी वह स्मृति-वेला मुझसे छीन ली। मुझे लगा कि आज नर मद-मूर्छित और नारायण नरकी मूर्छासे स्तम्भित है। कन्याकुमारीकी स्नेहच्छायासे खींचकर शंकराचार्यको अपने अंकमें बुलानेवाले बदरिकाश्रमके पीछे खड़े हुए नर-नारायण पर्वत आज उदास हैं। नरको नारायणके समकक्ष खड़ा करनेवाले महाभारतकार व्यास अब समासित हो गये हैं। नरको नारायणसे जोड़नेवाली सरस्वती आज मौन-मुकुलित है। नरमें नारायण देखकर 'नमो नारायणाय'के द्वारा प्रणामके उत्तरमें आशीर्वचन देनेवाली परम्परा अब सुषुप्त है, और नारायणकी नरलीलाके रस-अवगाहकी आनन्द-धारा आज अवरुद्ध है। क्यों? यह मैं समझ नहीं पाता।

लोग कहते हैं देश स्वतन्त्र हो गया। आज दस वर्षोंसे यही सुन रहा हूँ कि नरोत्तम गान्धीने जिस दरिद्रनारायणकी आराधना की थी, वे अब दरिद्र न रहेंगे। अब नर चेता है, उसके नारायण यदि हैं तो चेतनेके लिए बाध्य होंगे। युग अद्वैतवादी हो गया, उसके लिए नारायण प्रातिभासिक सत्ता है, नरकी कल्पना द्वारा निर्मित, और नर पारमार्थिक सत्ता है। नारायणको बदरीसे सन्तोष हो तो हो, नरको बदरीसे तृप्ति नहीं है। नरकी तृप्ति अपने वित्तसे हो ही नहीं सकती। उसे दूसरेका प्राप्य चाहिए। इसीके लिए वह अद्वैतवादी है। उस नरने पृथ्वीको स्वर्ग बना डाला है। विकास-योजनाका पारस छूनेसे मिट्टी सोना बन गयी, नरकी सामूहिक साधनासे बारहों महीने वसन्तके हो गये। अब पेड़ोंमें पल्लव नहीं आते, केवल फूल आते हैं। कामको छिपकर बाण फेंकनेकी ज़रूरत नहीं रही, सरे मैदान आकर वह एक साथ हज़ारोंका शिकार कर सकता है। लोगोंकी आँखोंमें हवाने पराग-धूलि वैसे ही झोंक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रखी है। द्विजदेवके शब्दोंमें—

"देखत ही वन फूले पलास
विलोकत ही कुछ भौंर की भीरन,
वावरी-सी मति मेरी भई,
लख वावरी कंज खिले घटे नीरन।
भाजि गयो कढ़ि ग्यान हिये तैं
न जानि पर्‍यौ कव छोड़ि कैं धीरन,
अन्य न कौन के लोचन होइं,
परागसने सरसात समीरन ?"

नारायणके व्यर्थ होते ही उनका कवच भी व्यर्थ हो गया। इसलिए अव कामको कोई डर-संकोच नहीं रहा। लोग कहते हैं कि काम और अर्थ नरके प्रथम अधिकार और अन्तिम कर्त्तव्य हैं। धर्म और मोक्ष तो नारायणकी कुसंगतिसे उसके पुरुषार्थ वने हुए थे, अव उनकी माँग अपने-आप घट गयी। महर्षि फ़्रॉएड और मार्क्सकी जय हो कि उन्होंने धर्म और मोक्षकी भी व्याख्या कामशास्त्रीय और अर्थशास्त्रीय धरातलपर कर दी। धर्म और मोक्षके नीचेका धरातल खिसक गया। व्यासजी वदरिकाश्रमसे नर-नारायणकी साखी देकर हाथ ऊँचे करके 'धर्म ! धर्म !' चिल्लाते रहें, कौन सुनता है ? उन्हींकी वातसे उनको चुप किया जा सकता है, 'न मानुषात्परतरं किञ्चिदस्ति'—मनुष्यसे बड़ी कोई चीज़ नहीं है। तो वावा, तुम आजके मनुष्यकी स्थापना चुपचाप क्यों नहीं मान लेते, काहेको गला फाड़ रहे हो ? डार्विनकी वात मान लो तो आज नहीं तो कल, मनुष्यका शरीर सिर-पैर-हीन होकर केवल मध्य-भागमय रह जायेगा, क्योंकि चलने और सोचनेकी ज़रूरत उसे नहीं रह जायेगी, उसे अपने-आप काम और अर्थ सुलभ हो जायेंगे, जिसके भोगमें ही उसे अहर्निश लिप्त रहना होगा। उस समय चलने-फिरने और सोचने-विचारनेकी फ़ुरसत ही कहाँ रहेगी ? तो व्यासजी, उस मनुष्यके लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप क्यों धर्मका उपदेश करते हैं ? वह वीतधर्म-वीतमोक्ष महामानव आपके उपदेशके परे है।

मैंने भी सोचा चलो प्रपञ्च हटा ! अकिञ्चन-प्रेमी नारायणका संग तो छूटा ! हम सही मानेमें स्वतन्त्र हो गये। अब बेरके झाड़ कट गये तो क्या हुआ, कल्पतरुका नया बिरवा तो 'आँगनमें फूल उठा' जो अलकाके ही कल्पतरुकी तरह—

"वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सहकिसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥"

कल्पवृक्ष अकेला ही रंग-विरंगे वस्त्र, आँखोंको तिरछी नज़र देनेवाली मदिरा, मंजरित पल्लवोंके भाँति-भाँतिके आभूषण, पाँवमें लगाने लायक़ आलता, असहाय स्त्री-जनोंके लिए सारीकी-सारी प्रसाधन-सामग्री प्रस्तुत कर देता है। बिना हाथ-पैर हिलाये बढ़िया वस्त्र, बढ़िया पेय, बढ़िया पैण्ट, बढ़िया बटन-रोज़ मिल जायें—इससे बढ़कर क्या सुख हो सकता है ? इसपर भी बेरकी ललक यदि किसीको बनी रहे तो फिर कोई चारा नहीं। जिस तरह किसी सत्पुरुषके मरनेपर उसके नामपर कोई साँड़ दाग़कर छोड़ दिया जाता है, उसी तरह इस बदरी वृक्षके कट जानेपर उसके नामपर परम्परावादी यह त्रिशूल उस छुट्टे प्राणीकी पीठपर दाग़ देना चाहिए। उसे ये भोग नहीं रुचते हैं तो जाये, घास चरे। पर मेरा अभाग कि अभी हालमें ही मेरे एक मित्रने बहुत ही सहज-भावसे मेरी पीठ-पीछे मुझे 'परम्परावादी' दाग़ ही डाला। हालाँकि वे अगर मुझसे ज़रा पूछ लेते तो मैं भी उनके कल्पतरुके नीचे पैर तोड़कर पूँछ लटका-कर, बैठनेवालोंमें अपना नाम लिखा लेता। पर जब उन्होंने अपनी सुख-सुविधाके लिए वहाँसे खदेड़ ही दिया, तब मैं क्या हूँ ? बदरी भी गयी, कल्पतरु भी गया। परती जो काग़ज़ोंमें तोड़नेसे बची है, या जो भू-दानमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दी गयी है, उसीका अवलम्ब बच रहा है।

अस्तु, यह तो मेरी अपनी बदक़िस्मती है। इसकी चर्चासे क्या लाभ? बात चली थी नर-नारायणकी। बीचमें यह क्षेपक आ गया। यह सच है कि ऊँची एड़ीवाला जूता पहिनकर जैसे आज नारी ऊँची उठ गयी है, वैसे ही मनुष्यका पौरुष भी अपनी बनायी बैसाखियोंके सहारे कई प्रमाण ऊँचे उठ गया है। वास्तविक जगत्‌में इस प्रक्रियाका प्रदर्शन एक दिवंगत जज साहब किया करते थे। इन आँखोंको तो उसे देखनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, पर मेरे पिताजी और उनके समवयस्क लोगोंके आँखों-देखे हालको सुनकर ही मैं उस प्रयोगकी दूरदर्शितापर क़ुरबान हूँ कि मनुष्यको ऊँचा उठानेका यह सरल नुस्ख़ा कितना पहले उन्होंने सोच निकाला था और उसपर अमल करनेका साहस दिखलाया था। तो मनुष्य ऊँचे उठा है, और अपने प्रयत्नोंसे ऊँचे उठा है। उसे किसी मन्दिरकी देहरीपर सिर टेकनेकी ज़रूरत नहीं रही, किसी सूर्य-चन्द्रकी ओर हाथ उठाकर अर्घ्य देनेकी ज़रूरत नहीं रही, किसी आगकी प्रदक्षिणा करनेकी ज़रूरत नहीं रही, किसी धरतीको हल्दी छिड़ककर पूजनेकी ज़रूरत नहीं रही, किसी पत्थरमें भगवान्‌को आवाहित करनेकी ज़रूरत नहीं रही, वह अपनेमें ही महान् हो गया। उसने पूजा-अर्चाके कुसंस्कार धो डाले, अपने चन्दनका, नैवेद्यका और आरतीका अधिकारी वह स्वयं हो गया। सुबह-दोपहर-शाम कृष्णार्पण करनेकी कातरतासे उसे राहत मिल गयी। अब वह अर्पित नहीं, अर्पणीय बन गया है।

मन कहता है कि यह अभिमान नरके रीतेपनका ही तो विस्तार है। अपनी सीमा और दुर्बलताको झकझोरकर अलग कर देनेके बजाय उन्हें सीनेसे चिपकाये रखनेका यह मोह इसीलिए तो है! तो वह नारायण-विमुख हो गया है। जिन लोगोंने नारायणके विग्रहकी विभिन्न कल्पनाएँ कीं, उनके समक्ष नारायणके असीम विस्तार, अनन्त ऐश्वर्य, अमित गति-शीलता और अपार सौन्दर्यके बिम्ब उपस्थित थे। ये बिम्ब उन्होंने प्रकृतिसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और मनुष्यके कलात्मक कृतित्वसे ग्रहण किये थे। इसीलिए उनके मन्दिर नारायणके विग्रहके रूपमें उनके लिए अर्चनीय थे। वे समस्त नदी-पर्वत और वन-उपवन नारायणमय थे जहाँ नर नारायणमें अवस्थित होकर विचरण कर चुके हों। वे काव्य-गीत-वाद्य-नृत्य नारायणसे तन्मय होनेके साक्षात् लक्षण थे जिनमें नरकी सीमाका बोध विगलित हो गया हो, और वे नर-नारी धन्य थे जिनकी चित्तवृत्ति नारायणाभिमुख हो गयी हो। देश-कालकी मर्यादाओंको लाँघकर नर-नारायणके द्वारा एक दूसरे-से मिलता था। नारायणसे विरहित होनेपर वह अपनेको अकेला पाता था। केवल मनुष्यके समाजसे ही नहीं, बल्कि चर-अचर जगत्के अणु-अणुसे, ब्रह्माण्डके नक्षत्र-नक्षत्रसे, वह यदि सरसता और सौहार्द पाता था तो नारायणके माध्यमसे। वे ही उसकी मानवातीत, देशातीत और कालातीत भाषा थे। वे हो उस नरके भीतरकी चिनगारीकी आग थे। नीतिशास्त्र, समाज-शास्त्र और आचार-शास्त्र नरके लिए इसलिए महत्त्व रखते थे कि ये सभी उसकी दृष्टिसे नारायणकी प्रेरणासे रचे हुए थे। उसके लिए वही मनोरंजन रंजन था जो कि नारायणसे अभिभावित हो। प्रत्येक जन्म, प्रत्येक जन्मके प्रत्येक वर्ष, मास, दिन, घड़ी और पलको उसने एक निरन्तर धाराके रूपमें प्रवाहित किया ताकि वह बिना किसी संशयके नारायणमें मिल सके।

"आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्"

इस भावनाका अभिप्राय ही यही था कि मनुष्य अपने असली स्वरूपसे कभी अपनेको बिछुड़ा हुआ न अनुभव करे। आज मानववादी आन्दोलन अपने उस असली स्वरूपको भूलकर उसे पानेकी कोशिश कर रहा है। वह समता, विश्व-बन्धुता और स्वाधीनताकी बात करता है। जिस भाषाके द्वारा इन अर्थोंकी प्रतीति होती है उस भाषाको वह भूल गया है। वह चाहता है कि मनुष्य मनुष्यसे प्रेम करे, मनुष्य मनुष्यका विश्वास करे, मनुष्य मनुष्यकी सहायता करे, मनुष्य मनुष्यको उठाये। पर क्यों प्रेम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करे, कैसे विश्वास करे, किस प्रकार सहायता करे और किस तरह उठाये, यह वह सोचने-समझनेकी कोशिश नहीं करता। प्रेम विना मनुष्यमें ईश्वर का साक्षात्कार किये, विना उस ईश्वरके लिए उत्कण्ठित हुए और विना उस उत्कण्ठासे द्रवित हुए भला कहीं सम्भव है? जहाँ सन्देह और विरोध-का वातावरण गरम हो, वहाँ परस्पर विश्वास और सहयोगकी बात जो विना किसी मनुष्यमात्र-व्यापी प्रेम-व्यापारका अनुभव किये करता है, वह आत्मवञ्चनाका शिकार नहीं तो क्या है? ऊँच-नीच और अमीर-ग़रीबमें भेद क्या परस्पर घृणासे मिट सकेगा? जवतक कि इन प्रत्यक्ष भिन्न पदार्थोंका हर नहीं निकाला जाता, तवतक ये जुड़ेंगे कैसे? विलकुल ही स्पष्ट है कि नर अंश है, हर वह वन नहीं सकता, उसे हरके रूपमें नारायणका आवाहन करना ही पड़ेगा, यदि वह दूसरे नरसे, अंशसे, जुड़ना चाहता है।

वहुत सोच-समझकर भारतवर्षने आराध्य देवताके रूपमें इसीलिए नर-नारायणकी जोड़ी स्वीकार की, और नर-नारायणके साथ-साथ तपको देशके परम धर्मके रूपमें ग्रहण किया। उसने न तो नर-निरपेक्ष नारायणकी अर्चनापर वल दिया, और न नारायण-विरहित नरको काम्य माना। उसने नरका अभ्युदय तभी सार्थक माना जव उसके साथ उसके उदात्त देवताका अभ्युदय हो। उसने नरको तभी पतित माना जव उसके साथ-साथ उसके मूल देवता पतित हो जायें। भारतीय जनको इसी सन्तुलनसे विपत्तिमें भी डिगने नहीं दिया। और आज सम्पत्तिमें भी उसे टिकानेके लिए उसे अपने जीवनमें उतारना होगा। जो लोग भारतीय समुदायकी वात करते हैं, उन्हें इस समुदायके वास्तविक धर्मको पहचानना होगा, और नरकी वन्दना करनेके पहले नारायणकी वन्दना करनी होगी। नरकी जय वोलनेके पहले नरकी उस 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्या शिवा सर्वार्थसाधिका' नारायणी शक्तिकी जय वोलनी होगी जो उसके भीतर वाणीके रूपमें प्रज्वलित है। उसे कल्पतरुका मीठा फल चखनेके पहले नरके जूठे वेरोंके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नारायणकी तृप्तिका रस चखना होगा, उसे अपने नये नन्दन-काननमें प्रवेश करनेके पहले अपने कण्टकाकीर्ण वदरिकाश्रमकी सुधि करनी होगी। वदरीके वृक्ष कट गये तो क्या हुआ, उन वृक्षोंके नीचे की गयी नर-नारायणकी साथ-साथ तपस्या तो कभी विच्छिन्न नहीं होनी चाहिए। इसीमें नारायणकी प्रतिष्ठा है कि—

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥"

सम्पादकजी, आप भी सोचते होंगे कि भ्रमरानन्द इस तरह बूढ़ोंकी-सी वातें क्यों करने लगा? कुरसी छोड़ते ही यह गद्दीधारी क्यों वनने लगा? पर क्या बतलाऊँ? जब बूढ़े ययातियोंको काम और अर्थ सताने लगा है और वे पुरुषोंको धर्मकी थाती सौंपनेके लिए आकुल हैं, तो फिर चारा ही क्या है? भ्रमरानन्दको अपने यौवनके एवज़में बुढ़ौती लेनी हो होगी, आप-जैसे बूढ़े लोग भी जब धर्मको रस्मी पहिनावा-मात्र मनाने लगे, और उस पहिनावेको भी बेढंगा कहकर छोड़ने लगे, तो भ्रमरानन्द ही अब संन्यास लेंगे। क्या बतलाऊँ? बहुत-सी बातें हैं। वे एक चिट्ठीमें समानेकी नहीं। फिर कभी लिखूँगा। आजकल मन उतनी मौजमें नहीं है।

आपका
भ्रमरानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मलयके अंचलमें

सम्पादकजी,

आपको इधर भ्रमरानन्दसे बड़ी गहरी शिकायत हो गयी थी कि वे सचमुच ही महन्त हो गये हैं। लीजिए इसी शिकायतको दूर करनेके लिए भ्रमरानन्दने साढ़े-तीन हज़ार मील नाप डाले। अभी-अभी ५-६ दिन हुए आपका यह अपराधी मित्र दक्षिणकी यात्रासे लौटा है और इस चिट्ठीमें उसीका बयान हाज़िर है।

यात्राका प्रसंग 'समर स्कूल ऑव लिंग्विस्टिक्स'का पाठ्य-क्रम था। वैसे मैसूरमें यह स्कूल लगनेके नाते इसका 'समर'से हम लोगोंने 'स्मर' नाम अधिक उपयुक्त समझा। मैसूरमें समरका तो कहीं पता ही नहीं था, हाँ स्मरके बाण—गुलमुहर, मल्लिका, शिरीष, अमलतास और जूही, चमेली, बेलासे गुँथी अलकोंमें-से बराबर तूणीरित दिखायी पड़ते थे। क्लूटीसे-क्लूटी सड़कका जूड़ा गुलमुहरोंसे लदा हुआ था। एक तरहसे लग यह रहा था कि हम लोग गुलमुहरोंके शहरमें ही विहर रहे हैं। वैसे आपको पता ही है कि मैसूर राज्य मलयगिरिके अंचलमें फैला हुआ है। यहीं हमारे कवियोंके मनमें उन्माद भरनेवाली दखिनैया बयारका नैहर है, और यहीं हमारी संस्कृतिका भाल चर्चित करनेवाली भक्तिकी चन्दनखण्डिकाका उद्भव-स्थान है। इसीके इर्द-गिर्द शंकर और रामानुजके जन्म-स्थान हैं और श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें जिस पुण्यतोयाके किनारे कलियुगमें भक्तिके उद्धारकी कहानी कही गयी है वह पुण्यतोया कावेरी भी इस राज्यके ठीक मध्य भागमें बहती है। इसलिए जाते समय रास्ते-भर इस प्रदेशको देखनेकी रोमांचित उत्कण्ठा रही, साथ ही इस सुरभित अंचलमें कहीं-कहीं हिन्द और हिन्दीके ख़िलाफ़ जो विष-वमन हो रहा है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसका कारण समीपसे देखकर पता लगानेकी भी मनमें बड़ी उत्सुकता रही। भाषा-विज्ञानकी नयी धाराका, जिसे वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान कहा जाता है, अध्ययन तो एक व्याजमात्र था। कमसे-कम भ्रमरानन्दको उससे कुछ विशेष रुचि नहीं थी। हाँ, इस अध्ययनके प्रसंगमें भी कभी-कभी ऐसी मसालेदार चीज़ें मिलीं जिनसे भ्रमरानन्दका मन भी खिल जाता था।

उत्तर प्रदेशकी लू, मालवाकी रात और महेन्द्र पर्वतके अंचलकी उमस पार करके जब भोर होते-होते मैं बंगलोर पहुँचा तो लगा कि एकदम धरतीका नक़्शा बदल गया है। धूसर धरती एकदम सुर्ख़ हो गयी और उस सुर्ख़ीके ऊपर रागी और धानकी हरीतिमा और भी चटकीली लगने लगी। ऐसा लगा कि मेंहदी रचे गातोंपर धानी आँचर लहरा उठा हो। दक्षिण भारतकी दूसरी विशेषता उसकी नगर-प्रधान सभ्यता थी। जितने ही नगर सजे हुए थे उतने ही देहात उजड़े दीखते थे। उत्तरमें जबकि लोग गाँवमें घर होना गौरवकी बात समझते रहे हैं (अब नहीं), दक्षिणमें गाँवमें खेती और व्यवसाय करनेवाले भी शहरमें ही वास करते हैं। इसीलिए दक्षिणके शहर प्रायः गुड़ियोंकी तरह बहुत सुरुचिके साथ सजाये गये हैं और देहात उपेक्षित हैं। और शायद इसी नागर प्रवृत्तिके कारण वहाँका शिक्षित वर्ग ग्रामीण-जनकी दृष्टिसे राष्ट्र और राष्ट्रकी भाषाकी समस्यापर नहीं सोच पाता और शायद इसीलिए वह अँगरेज़ीमें भारतकी राष्ट्रियताके सूत्र पानेकी बात करता है। दो-तीन बार वहाँके गाँवोंमें जानेका मौक़ा मिला और यह पता चला कि हिन्दी वहाँ समझ ली जाती है और टूटी-फूटी हिन्दीमें जवाब भी मिल जाता है। जहाँतक इन देहातोंका सवाल है, इनमें रहन-सहन, रीति-रिवाज़ और धरम-करममें उत्तरसे मूलतः कोई भी अन्तर नहीं है: वे ही ग्राम-देवता हैं, वे ही विधि-विधान हैं जो असमसे लेकर कश्मीर तक उत्तर भारतमें एकसे पाये जाते हैं। एकाध स्थानीय प्रकृति-विशेषके वरदान जुड़ जायें तो जुड़ जायें,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर समग्र रूपसे यदि दक्षिण भारतका एक ग्राम उत्तर भारतमें स्थापित कर दिया जाये तो वह विलग नहीं दीखेगा, थोड़ा-सा उपेक्षित चाहे दीखे। इसीलिए मुझे लगा कि उत्तर और दक्षिणका भेद धरतीका भेद नहीं, केवल हवाई भेद है। जिन लोगोंने आर्य-द्रविड़की वात वहाँ उठायी है और द्रविड़-संस्कृतिके पार्थक्यके अनुसन्धानपर विशेष बल देनेके लिए विद्याका उपयोग किया है उन लोगोंकी दृष्टि भारतके सौभाग्यसे वहाँके गाँव तक नहीं पहुँच पायी है। नहीं तो वह गाँव गंगोत्तरीका जल रामेश्वरमें चढ़ानेको जीवनकी महान् साधना क्यों समझता? काशी और मथुराके दक्षिणमें संस्करण पानेकी आवश्यकता क्यों अनुभव करता? द्रविड़-संस्कृतिके प्रमुख शोध-केन्द्र अन्नामलाई विश्वविद्यालयके स्नातकोंसे जब मेरी बातचीत हुई तो उनकी सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि अबतक भारतवर्षमें जितने भी सांस्कृतिक अध्ययन हुए हैं उनमें द्रविड़-संस्कृतिके योगदानकी ओर उपेक्षा बरती गयी है। मैंने उन्हें समझानेकी कोशिश की कि हिन्दी-साहित्यका संक्षिप्तसे-संक्षिप्त इतिहास भी दक्षिणी आचार्योंके भक्ति आन्दोलनोंकी भूमिकासे ही शुरू होता है और साधारणसे-साधारण विधि-पर भी मूल द्रविड़ विधिकी छाप दिखायी पड़ती है। जो लोग भारतमें भाषाओंके चार परिवारकी बात करके भाषाकी अनेकताका सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं उन्हें शायद यह नहीं मालूम कि भाषाकी गठनका सांस्कृतिक अभिव्यक्तिसे कोई नियत सम्बन्ध नहीं होता। वस्तुतः भाषामें अर्थकी प्रतिमाका ही विशेष महत्त्व है, और इस दृष्टिसे भाषा किसी भी परिवारकी हो पर यदि अर्थकी प्रतिमाका आकार लगभग एक-सा है—क्रियाएँ भिन्न हों, अव्यय भिन्न हों पर संज्ञाएँ जब एक हों—तो गठनका भेद भेद नहीं ला सकता; और जिन संज्ञाओंमें हमारी जीवन-यात्राके पद-चिह्न अङ्कित हैं वे संज्ञाएँ समग्र भारतमें ध्वन्यात्मक हेर-फेरके साथ एक हैं। पूजाके उपकरण, पूजनीय देवताका ध्यान और पूजाका मन्दिर वही हैं। मनुष्यके उन्नयनकी आकांक्षाकी भाषाके शब्द भी लगभग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वही हैं। विराट् जगत्में मनुष्य अपनेको अधिष्ठापित करनेका जब प्रयत्न करता है और अपनेको अपने आस-पास फैले हुए मुक्त वितानके साथ समरस पाना चाहता है तब वह विस्मय, अतीन्द्रिय राग और तादात्म्यके लिए जिन प्रतीकोंका प्रयोग करता है, वे प्रतीक समग्र भारतमें एक हैं। इस एकताका साक्षात्कार इस यात्राकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी। पर यह सच है कि भारतका सांस्कृतिक मन्त्रालय जिस कॅम्पोजिट कल्चरकी एकता-की बात करता है, और बात ही नहीं करता बल्कि उसीके अनुसार आचरण भी करता है, उस कल्चरकी एकताका स्वरूप इससे नितान्त भिन्न है। उसमें केवल कालको जोड़नेकी कोशिश है, देशको जोड़नेकी नहीं है। और संस्कृति काल तक यदि केवल सीमित रहे तो उसका कोई आकार ही नहीं बने। इसीलिए सांस्कृतिक मन्त्रालयकी भारतीय संस्कृति निराकार है, निर्गुण है, निराधार है, और निरंजन है। ऐसी संस्कृतिके साधक भी निरंजनी ही मिले हैं!

यदि भारतमें प्रान्तीयताके फैलते हुए रोगको रोकना है और भारत-को राजनैतिकसे अधिक सांस्कृतिक सूत्रमें जोड़ना है तो हमें भारतके सामान्य जनकी भावनाका ध्यान करना पड़ेगा न कि भारतके सीमित बुद्धिजीवियोंकी भावनाका जो उखड़े बिरवोंकी तरह कहीं भी आरोपित होनेके लिए आकुल हैं। बुद्धिजीवी वर्गको तो अपने शौक़के लिए नहीं बल्कि अपने अस्तित्वके लिए सामान्य जनकी आकांक्षा तक पहुँचना है। मैंने दक्षिण भारतकी यात्रामें यह अनुभव किया कि भक्तिके उपादान और भक्तिके विषयपर जब बातचीत की तो उन लोगोंसे मन बिलकुल मिल गया, और मुझे यह भी अनुभव हुआ कि बुद्धके बारेमें जितनी अन्धपूजा उत्तरमें पिछले दो-तीन वर्षोंसे प्रचलित हुई है उतनी अन्धपूजा दक्षिणमें नहीं है; और यह सही है कि आजकी भारतीय संस्कृतिकी एकता बुद्धकी नहीं शंकरकी सृष्टि है जिन्होंने बुद्धका जो कुछ भी ग्राह्य और शंकर अंश था उसे अपनेमें आत्मसात् कर लिया था। यदि सचमुच ही भारतीय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकताका मात्र गुणगान नहीं बल्कि अनुध्यान भी करना है तो शंकरके कृतित्वका उत्तर और दक्षिणमें पून: मूल्यांकन करना होगा और उसी पृष्ठभूमिमें नये भारतकी भावनाका चित्र उतारना होगा। उत्तर-दक्षिण-को शंकरने ही सबसे पहले एक किया। शंकरके बाद तुलसी तथा अन्य वैष्णव कवियोंने दक्षिणकी दर्शन-धाराको अपने भक्ति-काव्यमें उतारकर भारतीय जनताके लिए जीवनका संबल दिया। वह संबल आज हाथसे छूट-सा रहा है—बहुत कुछ तो इसलिए कि लोगोंमें बड़ी ग़लतफ़हमी है कि भक्तिमें मनुष्यका अवनमन है। यदि हिन्दीके भारतेन्दु युगकी स्वस्थ चेतना लोगोंमें हो तो इस भ्रान्तिके लिए कुछ स्थान ही न होगा। भारतमें राम-कृष्ण, शिव-पार्वतीकी भक्ति देशकी भक्तिसे विलग नहीं है और मनुष्य अपनी उन्नत आत्माके साक्षात्कारके लिए, या दूसरे शब्दोंमें अपनी आत्माके विस्तारके लिए, इन देवताओंके ध्यानकी आवश्यकता समझता है।

दर्शनमें थोड़ी देरके लिए मैं बहक गया, क्षमा करेंगे। क्योंकि शंकर और रामानुजके देशमें जानेपर यह बहकाव अपरिहार्य है। बात मैंने उठायी थी दक्षिण भारतके दृश्य-प्रसारकी। इस प्रवासमें जिन मनोरम स्थलोंको देखनेका अवसर हमें मिला उनमें कावेरीके जलप्रपातने सबसे अधिक स्मृतिपर छाप छोड़ी है। यह जलप्रपात शिवसमुद्रम् नामसे विख्यात है और दो-सौ फ़ीटकी ऊँचाईसे कावेरीका जल कई धाराओंमें नीचे गिरता है। इसे देखते ही मनमें विन्ध्य प्रदेशके चचाई, केवटी, कपिलधारा, पाण्डव, रनेह, बहुती और सनकुआ प्रपातोंकी याद हरी हो आयी। पर कावेरीका आस्फालित यौवन अपनी अलग विशेषता रखता है। यह साकांक्ष नहीं है पूर्ण काम है, और तृप्तिमात्र न देकर शक्ति भी देता है। इस प्रपातके नीचे तक जाया जा सकता है। रास्ता ढालुआ होते हुए भी बहुत विकट नहीं। चूँकि खड़ी दोपहरीमें हम लोग वहाँ पहुँचे थे और लखतके-लखत दुपहरियाके बहाने प्रकृतिने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमें अधरोंका आमन्त्रण दिया था जिससे हमारी प्यास और बढ़ गयी थी, हम बड़ी तेज़ीसे नीचे उतरे और अँजुरी भर-भरकर हमने कावेरीका उच्छ्वसित जल पिया। नीचे तक अधिक लोग नहीं जा पाये थे और हमारी मण्डलीमें जो दिग्गज थे उनमें-से केवल दो नीचे तक उतर पाये थे। एक आधे रास्तेमें ही झरबेरीकी छाँहमें गिरे पड़े थे और दूसरे ऊपरसे ही शोभा निहारकर तृप्त थे। इस जलप्रपातकी विशेषता यह है कि इसको हर एक कोणसे देखा जा सकता है, हर एक किनारेसे छूआ जा सकता है। इसलिए यह बहुत परिचित और बहुत आत्मीय-सा लगता है। भय-विस्मयका विषय न होकर यह बन्धु-प्रीतिका विषय है। कावेरी भक्तिकी स्रोतस्विनी कही जाती है। यह इस प्रपातको देखकर ही अन्वर्थ है। भक्ति भय दूर करके, विस्मयका उत्तर दे करके, अभय और विश्वासके वातावरणमें आराध्यसे तुरत गला लगानेवाली पहचान करती है। शिवसमुद्रम्‌की भी यही विशेषता है। वह अनेक मार्गोंमें भक्तिकी ही तरह विभक्त है, पर उन सभी मार्गोंकी परिणति एक ही जगह है। मार्गका भेद अवरोध कम करनेके लिए है, अन्तराय डालनेके लिए नहीं। कावेरीके किनारे हम बहुत घूमे। होयसालोंके स्मृति-शेष इसके किनारे देखनेको मिले। हैदर और टीपूके उत्थान-पतनके अवशेष मिले। रक्तोत्पलसे भरे हुए ताल मिले और अनुरागमें लगी हुई बन्धुरगात्र धरती मिली। इस सबके परिसरमें कावेरी दक्षिण भारतकी ही नहीं बल्कि समग्र भारतकी नदियोंमें गंगाके सदृश ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। गंगाकी तरह ही उसने संस्कृतियोंके सम्मिलन देखे हैं, और गंगाकी तरह ही वह शस्य-श्यामला धरतीके बीच बहती है। गंगाकी तरह ही वह गुलज़ार है। शायद इसीलिए वह दक्षिणकी गंगा है और उसीके किनारे दक्षिणकी काशी और दक्षिणकी मथुरा बसी हैं। दोनों शिवकी प्रिया हैं और दोनों भक्तिकी धारा। इस कावेरीका ऐतिहासिक और भौगोलिक परिसर गंगाकी ही तरह भव्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृतिके संस्पर्शसे कम मादक संस्पर्श वहाँकी कलाका नहीं था, यह हमने वेलूर, हलेविड और सोमनाथपुरम्की यात्रासे अनुभव किया। इनमें सबसे अधिक परिष्कृत और सुघटित कला वेलूरमें देखनेको मिली। हलेविड तो अधूरा ही रह गया था और सोमनाथपुरम्में कला अनगढ़ अवस्थामें ही है। ये तीनों मन्दिर मध्यकालीन हैं। सबसे पहले हमने सोमनाथ-पुरम् ही देखा था। वह मैसूरसे शिवसमुद्रम् जाते हुए रास्तेमें मिला था। सोमनाथपुरम्की स्थापत्य-रचना द्रविड़ है, पर शिल्प-विधान खजुराहो-भुवनेश्वरकी ही भाँति है, केवल उतना सँवार नहीं है। सोमनाथपुरम्से अधिक परिष्कृत और बहुविध हलेविडका शिल्प-विधान है। हलेविडमें अलंकरणकी सूक्ष्मता दूसरे छोरपर चली गयी है। हलेविडमें अभिप्रायोंके अंकनमें रूढ़ि-बद्धता अधिक आ गयी दिखती है। हलेविडका मन्दिर अधूरा ही रह गया था, शायद पच्चीकारीपर अधिक बल देनेका परिणाम ही यही होता है कि समग्रता नहीं आ पाती। पत्थरको सूत बना देनेका चमत्कार तो यहाँ ज़रूर मिलता है, पर शिल्पमें गति नहीं मिलती। नृत्य-वाद्य, अश्व-पंक्ति, गज-पंक्ति, दिक्पाल, सुर-सुन्दरी आदिका विन्यास उत्तरके मध्यकालीन मन्दिरों-जैसा ही है पर लालित्य उतना नहीं है। लगता है कलाकारकी साधनामें कोई जंज़ीर बँधी हुई रही हो या उसका मन कहीं अन्यत्र रमा हो। उसकी ये शिल्पकृतियाँ आधे मनसे अर्पित देवदासीके रागकी तरह परस्पर असमंजस हैं। यह ज़रूर है कि जहाँतक ऐतिहासिक महत्त्वकी बात है, हलेविड अपना वही स्थान रखता है जो एलुरा, क्योंकि एलुरा पौराणिक आस्थानोंकी कड़ी जोड़ता है और भक्तिके बदलते हुए प्रतिमानोंका सबसे प्रबल प्रमाण उपस्थित करता है। एलुरामें रामायण और महाभारतकी कथापर अधिक बल है, यहाँ दशावतार-क्रमगर। हिन्दू-धर्मकी कल्पना-शक्ति जैसे-जैसे विशद और व्यापिनी होती गयी, वैसे-वैसे उसके उपास्यका विस्तार होता गया। ११वीं सदी तक पहुँचते-पहुँचते उपासनाएँ एक विन्दुपर मिल जाती हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और त्रिमूर्ति, त्रिदेव, दशावतार सभी एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मकी विविध अभिव्यक्ति बन जाते हैं।

बेलूर हमारी यात्रामें सबसे अन्तमें आया था। यह होयसाल नृपति विष्णुवर्धनका बनवाया हुआ है। इस मन्दिरके शिलालेखसे यह पता चलता है कि स्वामी रामानुजाचार्यने विष्णुवर्धनको जैनधर्मसे वैष्णवधर्ममें दीक्षित किया। उसके अनन्तर उसने यह केशव-मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर निश्चय ही कलाकी दृष्टिसे बहुत उत्कृष्ट है और खजुराहो-भुवनेश्वरके समकक्ष ही है। बेलूर मन्दिरके अधिष्ठाता देवता मोहिनी-रूप-धारी विष्णु हैं। इसीलिए इसके द्वारपर काम और रतिकी विशाल प्रतिमाएँ हैं, रतिके हाथोंमें फल और कामके हाथोंमें फूलोंके बाण रागात्मक व्यापारके विकास और परिणतिका द्योतन कराते हैं। मुख्य प्रतिमाकी छवि तो अद्वितीय है ही, महामण्डपके स्तम्भोंके ऊपरकी चार नृत्य-मुद्राएँ होयसाल कलाकी प्राणवत्ताकी साकार प्रतिमा हैं। इनके अलावा बाहरकी दीवालोंपर खचित अभिप्रायोंमें-से व्यापिनी, भस्ममोहिनी और वृश्चिकधारिणीके अंगसौष्ठव भी अविस्मरणीय हैं।

इस चिट्ठीमें तो विस्तारके साथ इस कलापर कुछ नहीं लिख पाऊँगा पर बेलूरकी इन आविद्ध करनेवाली प्रस्तर छवियोंकी यादमें इतना ज़रूर कहूँगा कि खजुराहोमें यदि मैंने सम्मोहनका प्रभाव अधिक देखा तो यहाँ उन्मादनका। खजुराहोमें यदि रूपके विभ्रमको परिपार्श्वसे देखनेका प्रयत्न है तो बेलूरमें रूपके संभारकी चोट सामनेसे आड़ लेनेका साहस है। खजुराहोमें कन्दर्पके कोई अलग ईश्वर हैं, इसलिए गति नियन्त्रित है। पर बेलूरमें स्वयं ईश्वर कन्दर्पके वशवर्त्ती हैं, इसलिए गति उच्छल है। विष्णुका नारी रूप उन्माथी है, अशिवको मथनेवाला, विभ्रान्तको और विभ्रान्त करनेवाला तथा दर्पको भस्म करनेवाला। वह शिवके अर्धनारी रूपकी तरह अभय, विश्वास और तृप्ति देनेवाला नहीं। खजुराहोमें शिवकी नारी है, बेलूरमें विष्णु स्वयं नारी हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह तो इन कलातीर्थोंकी यात्राकी उपलब्धि हुई। पर सम्पादकजी, इन समस्त उपलब्धियोंसे बड़ी उपलब्धि दक्षिणके सहृदयोंसे भेंट थी। उनसे भेंट विद्याकी चर्चामें तो हुई ही, काव्य-चर्चा और काव्य-पाठमें हुई, हाट-बाज़ारमें हुई और हास-परिहासमें हुई। कर्नाटक संगीत हमारी लगभग हर साँझको स्वनित करता रहा। दक्षिणके विविध अंचलोंके लोकगीतोंकी विविध लयोंने हमारी यात्राओंको मुखरित किया। और हम दो महीनोंमें ही ऐसे ओतप्रोत हुए कि चन्दनके उस देशको छोड़ते हुए विदाईके सप्ताहमें हमारे नयन गीले हो उठते थे।

वहाँ लोग हिन्दीको जीविकाकी दृष्टिसे देखते हैं। तभी शंका करते हैं। पर जीविका तो केवल कुछकी ही समस्या है, साधारण जन हिन्दीको जोड़नेवाले सूतके रूपमें देखता ही है। हिन्दीके प्रेमी यदि आज केवल ग्रन्थि-बन्धनके अधिकारका दावा करनेके लिए विभिन्न भाषा-भाषियोंमें उसी राष्ट्र-भावनासे कार्य करें जिससे उन्होंने १९५०के पहले किया था तो हिन्दी कोई समस्या नहीं है। हिन्दीका अहित तो सबसे अधिक सरकार-द्वारा उसके हितके संरक्षणसे हुआ है, और उसके बाद अहित हुआ है हिन्दीवालोंकी आत्मतुष्टि और घर-घुसना नीतिसे। हिन्दीके प्रसारका सबसे सुगम रास्ता है हिन्दी-भाषी और अहिन्दी-भाषी क्षेत्रोंमें परस्पर हिन्दी अध्यापकोंकी अदला-बदली। हिन्दी-भाषी राज्योंकी सरकारें यह न भी करें तो कमसे-कम हिन्दीकी संस्थाओंको यह कार्य अपने हाथमें लेना चाहिए। वैसे व्यक्तिगत पैमानेपर छुट्टी ले-लेकर एक-एक सालके लिए यदि हिन्दी अध्यापक दक्षिणके स्कूलों-कॉलेजोंमें हिन्दी पढ़ाने जायें और उत्तरके उनके स्कूल-कॉलेज दक्षिणी भाइयोंको उनके स्थानपर लेनेके लिए प्रस्तुत हों तो भी हिन्दीके प्रति सहज अनुराग बहुत बढ़े और हिन्दीवाले भी हिन्दीको सार्वदेशिक पृष्ठभूमिमें अधिक स्पष्टताके साथ देख सकें। वैसे मैंने सुना है कि भारत सरकारके शिक्षा मन्त्रालयकी हिन्दी शिक्षा-समिति जँभाई ले रही है; पर इस उज्जृम्भणकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लीला कौन जाने नाटकीय ही न हो !

पत्रका कलेवर मुझे लगता है वहुत वढ़ गया है और यद्यपि वातें करनेको वहुत हैं, पर आपकी डाँटका ख्याल करके वस एक वात और जोड़ूँगा। आजसे १२०० वर्ष पहले दक्षिणने उत्तरके प्रश्न वने देवताओंको उत्तर दिया, आज उत्तरको उस उत्तरकी कृतज्ञतामें दक्षिणके प्रश्न वने वुद्धिजीवी वर्गको उत्तर प्रस्तुत करना है। दक्षिणका मलयज हमारी संस्कृतिके भालपर चर्चित है, इसीसे वहाँसे जो हम चन्दनखण्ड और चन्दनके विविध कलात्मक स्मृतिचिह्न इस यात्रामें लाये हैं, उनका यह तगादा है कि उत्तर अपनी शुचिता, उदारता और समर्पणशीलतासे अपनेको उस तिलकके योग्य वनाये। उस मलयाचलके चन्दनवृक्ष हमसे यह आशा करते हैं कि उनके अंगमें लिपटे हुए भुजंगोंके विषसे उनका उद्धार करें क्योंकि यह उद्धार उनका नहीं, उनकी उस सुरभिका होगा जो वहाँसे आनेवाली वयारपर चढ़कर हमारे सांस्कृतिक जीवनको सदियोंसे नया उत्साह प्रदान करती आयी है। हम विषसे सम्मूर्छित न हों, कालिय-दमनसे उत्साहित हों और अपनी वाँसुरीकी तानसे नागपाशसे मलयका और मलय-मारुतका मोक्ष करा सकें, यही हमारी चरम सार्थकता होगी। सम्पादकजी, इस चिट्ठीको चन्दनचूर्णमें वासित करके भेज रहा हूँ ताकि आप इस भ्रमरानन्दी पुकारको दूर तक पहुँचा सकें।

आपका

भ्रमरानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरी रूमाल खो गयी

पता नहीं लोग कभी-कभी मेरी भी याददाश्तकी तारीफ़ कैसे करने लगते हैं, जबकि हालत यह है कि कोई सफ़र ऐसा नहीं जाता जिसमें कोई-न-कोई चीज़ कहीं-न-कहीं गुम न हो : कभी धोती, कभी गिलास, कभी जूता, कभी शीशा, कभी क़लम, कभी किताब—ग़रज़ कि जिस सफ़रमें मैं अक्षत बचकर चला आता हूँ उसको घरके लोग दुर्घटना मानते हैं ! घरपर भी दिनमें कई बार तो क़लम ग़ायब होती है, पिछले लिखे लेख तो जब उनकी ज़रूरत पड़ती है तो कभी मिलते ही नहीं। बड़ी झुंझलाहट होती है कि आखिर इतना गड़बड़झाला हो कैसे जाता है। चिट्ठी-चौपातीके बारेमें तो और भी बुरा हाल है। एक-एक पखवारे बाद जब बीस-पचीस चिट्ठियोंका जवाब लिखने बैठता हूँ तब देखता हूँ कि चिट्ठियोंकी बात याद भी है तो पते ग़ायब हैं, पता भी लिख गया तो हफ़्तों तक चिट्ठी जेबमें पड़ी रह जाती है, डाकके बम्बे तक नहीं पहुँच पाती। अगर किसी दूसरे आदमीके सिरपर शामत सवार हुई और उसने मुझे चिट्ठी-रसाँ बनाया तो उसकी चिट्ठी सही-सलामत फिर उसको ही वापिस मिल जाती है यही बहुत ग़नीमत होती है। यों सौदा-सुलुफ़की कोई खास ज़िम्मेवारी निभानी नहीं पड़ती, पर यदि गया भी तो निश्चय है खरीदारी और ज़रूरतमें कोई खास मेल नहीं होने पाता है। कभी-कभी सुयोग्य गृहिणीने एहतियातके लिए मेरी इस भुलक्कड़ प्रकृतिपर नियन्त्रण पानेके लिए पुराने नुस्खे आज़माये हैं, मसलन् रूमालमें ही गाँठें बाँध देना। पर अमूमन हुआ क्या है कि रूमाल निगोड़ी ही रास्तेमें गिर गयी है और जिस चीज़की याद गाँठमें बाँधी गयी थी उसकी तो फिर चर्चा ही क्या !

ऐसी कितनी रूमालें खोयी हैं यह मुझे क्यों याद हो, पर आज प्रसंग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा उपस्थित हो गया कि रूमाल खोनेकी घटना कुछ बड़ी दीखने लगी है। हफ़्ते-भरसे मेरे एक अत्यन्त सुव्यवस्थित मित्र तगादापर-तगादा कर रहे हैं कि एक ललित निबन्ध लिखकर दो, बस ऐसा कि तबीयत फड़क उठे, बिलकुल अछूता विषय हो और हो एक-दम टटका, तुरन्तके मथे नवनीतकी तरह हृद्य और ताज़े फूलकी तरह महमहाता। तब मैंने अपने दिमाग़की एक-एक कोठरीके काग़ज़-पत्र उलटने शुरू किये कि कहीं कोई ललित निबन्धकी बात सूझ जाये। पर वहाँ तो दुर्व्यवस्थाका ऐसा सुव्यवस्थित साम्राज्य है कि नयी उद्भावना हो भी तो समयपर मिले नहीं। वही 'असमये मतिरुन्मिपति ध्रुवं' वाली बात है। खीजकर मन रीत गया, जेठके तीसरे पहरकी बतासकी तरह। निढाल होकर पड़ रहा, नींद आ गयी, सपनोंका जाल तना : रूमाल रास्तेमें गिर गयी है और मैं रिक्शा मोड़कर कई सौ गज़ तक सारी सड़क छानता हूँ, हर एक राहगीरसे पूछता हूँ, रूमाल नहीं मिलती—इसी झुँझलाहटमें नींद उचट गयी। जगा तो फिर वही ललित निबन्धवाला तगादा। तब मुझे लगा कि यह तो मेरे समूचे जीवनका अभिशाप है। यह रूमाल ऐसी-वैसी नहीं है, यह तो मेरी जीवन-यात्राका वास्तविक संकल्प है जिससे मैं बार-बार बिछुड़ जाता हूँ। मेरी क़िस्मतने मेरी मस्तीकी रूमालमें कोई गाँठें बाँधी थीं, इसलिए कि शौक़ीन तबीयतका आदमी है, सुरभिकी कामनासे न भी सही, मात्र रास्तेकी दुर्गन्धसे बचनेके लिए तो रूमाल निकालेगा ही, निकालते ही गाँठपर नज़र पड़ेगी ! पर क़िस्मतको क्या पता कि ऐसे लापरवाह आदमीसे पाला पड़ा है जो रूमाल ही ग़ायब कर देगा। अब लाख सिर मारता हूँ, खयाल नहीं आता कब और कहाँ यह रूमाल गिरी। किसीने झटकी नहीं इतना तय है, क्योंकि अकेले ही रिक्शेपर सवार हुआ था। रिक्शेकी सवारी मेरे जीवनका एक अत्यन्त आवश्यक अंग है, शायद सबसे बड़ा ऐश और व्यसन भी। सो रिक्शेसे बीचमें कहीं किसीके घर उतरा भी नहीं, ज़रूर कहीं रास्तेमें गिरी ही होगी। किसीको रूमाल मैंने दी भी नहीं, यों भी देने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लायक़ वह थी कहाँ ! खादीकी सफ़ेद-सी रूमाल, कोई उसपर क़सीदा भी नहीं, चन्दनके चूर्णसे वासित ज़रूर थी, पर और कोई ख़ास बात तो थी नहीं कि मैं उसे किसीकी भेंट करता। तो आख़िर कहाँ गिरी ?

एक-एक मोड़ ध्यानमें आता है। अभी उस रंगीन दूकानपर रिक्शा रोककर पान खाया था तब तो शायद थी। स्मृतियोंकी रील जल्दी-जल्दी उधेड़ना शुरू करता हूँ, उतावलीमें तह बिगड़ती चली जाती है, पर ठीक-ठीक वह बिन्दु नहीं मिल पाती जब कि ठीक-ठीक कहा जा सके कि रूमाल नहीं थी। देखिए न अभी जब मैं पहले चौराहेपर था तब तो थी। मेरे सामनेसे पोस्टमॉर्टमसे लौटी हुई लाश गुज़री—वह लाश मेरी ही लालसा की लाश थी—लालसा क्यों अकाल कालकवलित हुई, इसकी मीमांसामें कई दिन लग गये पर कारणकी तशख़ीश नहीं हो सकी, अन्तमें उसे दफ़नानेको भेज दिया। पर मेरी रूमाल तब थी, क्योंकि मैंने उसे नाकपर लगायी नहीं कि लाशकी सड़ाँधका प्रत्याख्यान हो गया। रूमालकी सुरभिने संकेत दिया कि लालसाकी लाश रास्तेमें मिली यह तो सगुन ही हुआ क्योंकि इस लाशके साथ कोई रोनेवाला न था। आगेका रास्ता मंगलमय है। वह लालसा नहीं पूरी हुई, कोई बात नहीं, यह नैराश्य ही फल देगा !

और मैं इत्वरताके तीर्थ, राजोद्यानमें दाखिल हुआ। रूमाल हाथमें रखी। एकसे-एक खुशबूवाले फूलोंकी क़तारसे मनका चौक पूर गया। रिक्शेवालेसे कहा, ज़रा धीरे चलो। हरेक कोनेकी महक आने दो और हर एक महकको तहियाके रखने दो। जब बाग़में दूबपर कुछ क्षण बैठे बिना रहा नहीं गया तो रिक्शेवालेके बड़बड़ानेके बावजूद काफ़ी अरसे तक दूबपर बैठा भी रहा। स्वदेशी राजके मालियोंकी लापरवाही ही कहूँगा, पता नहीं कहाँसे उस मखमली बिछौनेपर बग़लके नीलकाँटेकी बाड़से झरकर काँटे बिखर गये थे। हाथमें बुरी तरह चुभे, खून निकल आया, उसी रूमालसे मैंने उँगली बाँधी। तब तक तो रूमाल थी ही। सरकारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नौकरीका शूल चुभकर भी क्षणिक दर्द देकर रह गया। ललित निबन्धके पानेमें मैंने रूमाल भिगोयी थी। इतने तक तो अत्यन्त अवदात स्मृति है, फिर रूमाल कहाँ ग़ायब हुई ?

इस आरण्यक आश्रममें जानेपर मैंने अपना रिक्शा रोका और तब मुझे ऐसा लगा कि शायद यहीं मेरा कोई काम है। क्या काम है, यह टटोलना चाहा तो फिर रूमालका ध्यान आया, क्योंकि काम तो रूमालकी गाँठके साथ बँधा था। जेबमें हाथ डाला तो रूमाल ग़ायब; रिक्शेवालेको पुकारा, बड़ी मुश्किलसे वह मुड़ा, उसने भी कोना-अँतरा झाड़कर दिखा दिया, रूमालका पता नहीं चला। रिक्शावाला वैसे ही ऐसी उजबक सवारीसे खीज चुका था, उसने पैडिलपर पैर मारे और ओझल हो गया। अब गन्तव्य स्थानपर पहुँच गया, इतना निश्चय लेकर करूँ क्या, शहद लगाकर चाटूँ ? इस गन्तव्य स्थानपर पहुँचनेका मक़सद क्या था, यही जब नहीं मालूम तो फिर मेरे पहुँचनेका मतलब ही क्या हुआ, और नहीं तो मेरी वह रूमाल भी ग़ायब हो गयी।

किसीसे कहता हूँ तो वह हँसता है : तुम भी अजीब आदमी हो, ऐसे शान्त वातावरणमें पहुँच गये, ईश्वरको धन्यवाद नहीं देते, शरद् ऋतुकी साक्षात् प्रतिमा महर्षि जाबालिकी स्निग्ध छायामें आकर भी तुम्हें चिन्तातप सता रहा है ! यहाँ निर्भय होकर सहज विश्वासी मृग आँखें मूँदकर रोमन्थन कर रहे हैं, मृगी मृगके सींगसे अपनी बायीं आँख खुजला रही है, बछड़ेको दूध पिलानेके लिए गायें बनसे लौटकर रँभा रही हैं, बछड़े पगहा तुड़ा रहे हैं, मुनि-कुमारियाँ दिवसके आलबाल-सिंचनसे क्लान्त होकर अपनी सिंचित लताओंके साथ प्रबोधचन्द्रोदय-वेलामें अमृतपान कर रही हैं, मुनिकुमार शिवरूप गुरुके चरणोंमें वन्दना करके पूर्णकाम हो रहे हैं, गुरु स्थितप्रज्ञ होकर आसनपर विराजमान हैं, उन्हींकी देखा-देखी आश्रमके तरुगण भी प्रकाश-स्नात होकर स्तिमितसे खड़े हैं, वैसे ही असीमताके बोधमें परिनिष्ठित और पासमें बहनेवाली कलस्विनी भी कान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगाकर आश्रमकी सन्ध्या-मुखरित श्वास सुन रही है; और तुम हो कि उदास हो : हाय मेरी रूमाल, हाय मेरी रूमालकी गाँठ ! मरी तुम्हारी रूमाल और उसकी गाँठ ! ऐसे खफ़्तुलहवास थे तो फिर तपोवनमें क्यों आये, पार्ककी चहल-पहलमें ही पड़े रहते ! दिन 'हरी घासपर क्षणभर' बना रह जाता, इस सन्ध्याकी निभृत शान्ति—ठीक-ठीक कहा जाये तो—सूचीभेद्य शान्ति भंग करने क्यों आये !

क्या बताऊँ, मेरे दोस्त, आना बदा था इसलिए आया, रिक्शेका पैसा पहले ही दे चुका था इसलिए यहाँ आया, और चूँकि यहाँ आनेके लिए मैंने पैसा दिया था इसलिए ज़रूर ही कोई मेरा ज़रूरी काम रहा होगा। अब क्या करूँ, वह काम तो काम गया, मेरी वह रूमाल भी खो गयी जिसने रास्तेमें मुझे इतना त्राण दिया—दुर्गन्धिसे, काँटेसे और धूलिसे। तुम्हारी नज़रमें वह रूमाल छोटी चीज़ होगी, पर दोस्त, तुम उसकी क़द्र क्या जानो। तुम समझते हो श्वास-नलीका मात्र परिमार्जन करनेवाली रूमाल थी, या वक्तृताकी एक विशेष अदा बननेके लिए बार-बार मुँहकी शोभा बढ़ानेवाली रूमाल थी, यां हाथसे खड़ियाका चूरा झाड़नेवाली रूमाल थी। मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ कि वह रूमाल मलयजसे सुवासित थी, मेरे जन्म-जन्मान्तरकी सहेलीने बड़े जतनसे उसे सुवासित किया था, केवल मलयजसे ही नहीं बल्कि मलयजसे भी अधिक शीतल और अधिक सुरभि-वाले अपने बदनोच्छ्वाससे, और फिर उसमें बहुत ही मीठे उलहनेके साथ अत्यन्त कलापूर्ण ढंगसे दिखा-दिखाकर एक गाँठ दी थी—विस्मरणशील, यह गाँठ दे रही हूँ, याद रखना ! पर मैं हूँ कि रूमाल ही गँवा बैठा हूँ, बस इतना ही याद है कि यह रूमाल मेरी आदि-शक्तिकी सौंपी हुई थाती थी। यह रूमाल झटकी हुई रूमाल नहीं थी, उधार ली हुई भी नहीं थी, यहाँतक कि पैसोंके दाम खरीदी हुई भी नहीं थी; इस रूमालकी वक़त तुम्हारे जैसे लोग क्या करेंगे। तुम्हारो मस्तीकी परिभाषा है आत्म-सन्तुष्टि, तुम्हारी रूमालकी आख्या है उपयोग। तुम क्या जानोगे कि मस्ती जेबमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रखनेकी चीज़ नहीं, हाथमें लेकर मुक्त पवनमें लहरानेकी चीज़ है, यह तुम्हारे कलुषको पोंछनेके लिए नहीं, तुम्हारे पुण्यके आमोदको परिपूरित करनेके लिए है। तुम्हारे लेखे एक रूमाल गयी, बीसियों मिल जायेंगी—मद्रासमें रुपयेमें एक दर्जन—पर यहाँ रूमालके साथ चित्तकी उज्ज्वलताकी सारी संचित पूँजी चली गयी। माना कि इस तपोवनमें उस पूँजीकी कोई विशेष दरकार नहीं, उलटे इस उदासीके अखाड़ेमें शायद उसका रहना ही बड़ा उत्तेजक साबित हो; पर मेरी नज़रसे भी ज़रा देखनेकी कोशिश करो, मैं तो उसके बिना बराबर इसी बेचैनीमें रहूँगा कि आखिर मैं यहाँ क्यों आया, मेरी उस मस्तीका क्या प्रयोजन था? वह किस सिद्धिके लिए संकेत थी? उसके बिना तुम्हारी यह निश्चल शान्ति मेरे किस कामकी? ठीक है, उस मस्तीके लिए मेरा विलाप तुम करुणा-विलासियोंके मन-बहलावका साधन बन जाये, पर मैं जो साधनहीन-सा अपनेको पा रहा हूँ, कहाँ जाऊँ?

मुझे पता है कि मेरे ऊपर तरस खाकर कुछ लोग उस खोयी हुई रूमालका पता लगानेमें मेरी मदद करना चाहेंगे, मैं उनके प्रति बड़ा आभारी हूँ; पर इसके साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि मुझसे उस रूमाल-का ठीक-ठीक हुलिया भी जानना चाहेंगे और इसीलिए मैं और अधिक चिन्तित हूँ कि उस रूमालका क्या हुलिया बतलाऊँ। देखनेमें उसमें अपनी कोई अलग विशेषता हो तब न? यहाँतक कि वह धोबीके घर भी कभी नहीं गयी कि उसपर धोबीका नम्बर लगा हो : यही उसकी पहचान हो। काल-रजकके पाटेपर जानेकी उसकी नौबत ही नहीं आयी। उजली है, बिलकुल बगुलपंखी नहीं, हाथमें लगे-लगे कुछ उजलापन झँवा गया है। उसमें कोई हाशिया भी नहीं है, सीधी-सादी चौकोर है, चारों कोर भी अनसिले हैं। मामूली खादीका टुकड़ा है, नया है या किसी पुराने कपड़ेका पुरावशेष है, ठीक-ठीक यह भी नहीं बता सकता; बेदाग़ है, इसकी भी गारेण्टी नहीं दे सकता, चन्दनके चूर्णका दाग़ तो है ही,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उँगलीके खूनका भी दाग़ होगा; और भी दाग़ हो सकते हैं। वह मेरी है; इसकी पहचान सिर्फ़ एक है कि दूरसे भी कोई उसे दिखाये या मेरी दोनों आँखें मूँदकर भी मेरी हथेलीपर उसे रखे तो मैं उसे पहचान जाऊँगा।

वाह रे निराली मस्ती! मस्ती क्या हुई अहंकारकी परासीमा हुई, ममताका परम संकोच हुई, और हुई व्यक्तिगत स्वार्थका निकृष्टतम रूप?

तो भाई, इसका जवाब मेरे पास नहीं है, क्योंकि मेरी मस्तीमें सारा संसार था; पर सारे संसारमें मेरी जैसी मस्ती, कमसे-कम मेरी जानकारीमें, नहीं थी, मात्र इतना ही मेरा दावा था; पर अब वह भी नहीं है। कोई दूसरा वैसा दावेदार हो तो सामने आये, अपनी रूमाल हिलाये, मैं सच-सच बतला दूँगा कि यह रूमाल वैसी है या नहीं। इतना मैं बता दूँ कि तुम रूमाल हिलाकर सुखके क्षणको विदा देते हो, मैं वह रूमाल हिलाकर विगत दुःखके क्षणको विदा देता था। आज उस रूमालका गुम होना इसलिए भारी पड़ रहा है कि मामूलीसे-मामूली दुःखका क्षण भी अब लरज़ जाता है तो लरज़ ही जाता है, उसको विदा करनेका मेरे पास कोई साधन नहीं।

ललित निबन्धोंके तगादगीर भला क्यों विश्वास करने लगे कि पानी तो है पर रूमाल नहीं जिसमें पानी रहता था, निबन्धकार तो है पर उसकी ललिता नहीं है जो स्वयं दूतीका कार्य निष्पन्न किया करती थी। उनका तगादा जारी है, पर क्या करूँ—मेरी रूमाल खो गयी है यह कारण उनके गलेके नीचे उतारूँ तो कैसे उतारूँ? ऐसी रूमाल काहेको किसीके पास होगी, होगी भी तो काहेको किसीसे ग़ायब हुई होगी और, ग़ायब हुई होगी तो काहेको कोई तब भी मेरी तरह साहित्यिकके रूपमें जी रहा होगा—

"कइअवरहिअं पेमां णत्थि व्विअ मामिमाणुसे लोए।
अह होइ कस्स विरहो विरहे होन्तम्मि को जीअइ।"

इस गाथामें यदि 'पेमां'का व्यापक अर्थ 'रागात्मक आनन्दवृत्ति' ले लिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाये तो इसमें मेरी मनोदशाका सही-सही अंकन है, क्योंकि मुझे लगता है कि विश्वकी सुरभि समेटनेवाली मेरी वह मस्तीकी रूमाल कहीं खो गयी है और ऐसी वेलापर आकर उसके खोनेका ज्ञान हुआ है जबकि उसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी।

समझमें नहीं आता किसे कोसूँ : अपनेको, उस सहेलीको जिसने रूमालमें ही अपनेको अर्पित किया, इस कमबख्त रूमालको, उस भाड़के रिक्शावालेको, रास्तेको, रास्तेमें मिलनेवाली लाशको, रास्तेमें भटकानेवाले बग़ीचेको या इस मंज़िलकी तपोवनी मुरदादिल शान्तिको! बहरहाल रूमाल-की खोज अभी जारी है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि शायद वह खोयी नहीं है, कहीं विस्थापित हो गयी है; पर फिर जब मिलती नहीं है तो यही रह-रहकर खीज होती है कि विस्मृति भी कैसी मिली कि जहाँ उसे जगना चाहिए था वहाँ तो सोयी रही और जहाँ सो जाना चाहिए वहीं जगकर दुःख जगाती रहती है कि मेरी रूमाल खो गयी।

पादटिप्पणी—रूमालका स्त्रीलिंगमें प्रयोग भोजपुरी होनेके नाते क्षन्तव्य न हो तो 'रूमाल'की 'मस्ती'के साथ जोड़ी मिलानेके ही नाते स्वीकार्य हो, यह लेखककी विनम्र प्रार्थना है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इकाई बनाम दहाई

भाई चन्द्रदेव,

लज्जित हूँ, तुम्हारा तगादा फिर आ गया। तुम इकाईके लिए ललित निवन्ध माँगते हो, मैं कैसे तुम्हें समझाऊँ कि अव लिख नहीं आता। मनमें कुछ घुमड़ता भी है तो उमस-भर देकर रह जाता है, वरस नहीं आता। कुछ वन्द आवारा कुत्तोंकी तरह किसी सूने चौराहेपर जुड़ते भी हैं तो उनवान ही नहीं वन पाता। स्मृतियाँ कुरेदती हैं, पर मन छिटक जाता। वादे झिझोड़ते हैं, पर कसमसा भी नहीं आता। सच कहता हूँ कोलाहलके वीच आजकल अनाकुल नींद सो रहा हूँ। जगनेकी कोशिश भी करना चाहूँ तो मेरे मनका पंछी पंख समेट लेता है। लिखनेकी लाख कोशिश भी करूँ तो क्या लिखूँ, यही उभर नहीं पाता है। पहले पिंजरेकी छटपटाहट तड़प निकाल लेती थी, अव आकाशका असीम विस्तार ही भूल-भुलैयाका स्तिमित भय देता है। दिनमें मुर्दारिसी खवर लेती है कि तुमने आज मसान जगाया कि नहीं, अतीतकी खोपड़ीमें भविष्यका रक्त पिया कि नहीं, और रातमें मेरी इयत्ता या—तुम्हारे ही शब्दको उधार लूँ—मेरी इकाई मेरे सामने गुमसुम-सी खड़ी हो जाती है कि आज भी चुटकी-भर सिन्दूर लाये कि नहीं। सुवह होती है पर मनके द्वन्द्वचर पतत्री मिल नहीं पाते, शाम आती है पर विलगाव भी हिलग नहीं पाता। दुपहरकी धूप तेज़ होती है, पर छाँहकी चाव नहीं होती; निशीथका वेला अव भी लहकता है, पर सेज महक नहीं पाती। छोटा-सा घर, उसमें छोटा-सा आँगन, मेहमानोंकी भीड़, मेहमाँनवाज़ीकी वान – कैसे फ़र्ज़-भर अदा करूँ? ये मेरे गुरुदेव हैं—इनकी प्रभु-सम्मित वाणी है कि शब्दोंको अंकोंका मोल दो, गणित ज्ञान-विज्ञानकी जननी है, क्योंकि शून्य उसकी चरम उपलब्धि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। ये मेरे अग्रज हैं—इनकी सीधी-सी चेतावनी है कि पहले बुद्धिका चैत्य बना लो, उस चैत्यकी सज्जा सजा लो, उसके साधक जुटा लो, विनय-पिटक बुन लो, तब जो लिखोगे वह लिखित कहलायेगा, वैसे तो सौ बोलो पर लिखो एक न, लिखना क्रिकेटकी भाषामें बल्लेबाज़ोंके लिए उलटी-सीधी गेंद फेंकना है। ये मेरे छोटे भाई हैं, मेरा आदर करते हैं—ये मुझसे नाराज़ हैं। (भाई, तुम भी छोटे भाई हो, कहीं तुम भी तो नाराज़ नहीं हो?) मैं अब लोक-मंगलमें विश्वास नहीं जगाता, मेरी हल्दीका रंग छूट गया, मेरे चन्दनकी गन्ध रूठ गयी, मेरे गोरसका रस सीठ गया, मेरे अन्तरकी बँसवारीमें विश्वासोंकी मलयानिल आते ही कटे-अधकटे बाँसोंके खोखलेपनमें भटक गयी। मैं न्यूरेल्जिया (अंग्रेज़ीके अध्यापक, हिन्दीके खेवनहार बी० डी० एन्० साहीका अभिमत है) का कभी मरीज़ था, पर मेरे मर्ज़के जो गँहकी इने-गिने ही बन गये उनसे कैसे कहूँ कि अब दूकान बढ़ा चुका। ये मेरे प्रिय वयस्कोंके मेघदूतों (डाककी यह संज्ञा मैंने ही अपने मैसूर-प्रवासमें दी) के अनखुले बण्डल हैं। हिम्मत नहीं होती इन्हें खोलूँ। पता नहीं उलहना हो, पता नहीं महज़ अपनी अनधुली निगेटिव तसवीरोंका धोना हो! पता नहीं क्या हो, खोलते भय लगता है। इन्हें खोलते ही वह अपनापन खुल जानेका डर है, जिसे मैं सौ परतोंमें लपेटकर रखे रहना चाहता हूँ। इन मेहमानोंके बीच हँसती-किलकती मेरी छोटी-सी मिनी भी तो है, और उस मिनीकी रवि ठाकुरकी मिनीकी ही भाँति अगणित असमंजस और अनवच्छिन्न प्रश्नोंकी यह क़तार भी तो है: बाबूजी, माँ बाबाकी बड़ी बहू हैं, दादीकी दुलहिन हैं, दादाकी बबुई हैं, पर तुम्हारी कौन हैं? बाबूजी, रवि भैया जब चीख़ते-चिल्लाते हैं तो उनके दोनों हाथ बाँध दिये जाते हैं, पर जब मैं रोती हूँ तो तुम मेरे हाथ क्यों नहीं बाँधते? बाबूजी, इतना बड़ा गुब्बारा फूटते ही इतना छोटा क्यों हो जाता? मैं चुप रहता हूँ तो मुँह फुलाकर कहती है: जाओ मैं तुमसे नाराज़ हो गयी, मैं तुमसे नहीं बोलूँगी! पर मैं बोलूँ तो क्या बोलूँ? मनोविज्ञान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुत कम पढ़ा है, केवल उतना ही जितना भाषा-विज्ञानमें काम आता है—सही बात समझाऊँ कैसे और झूठ बोलकर अपनी ही आत्मजाको बहकाऊँ भी कैसे ?

ये मेरे तटस्थ और निछोह आलोचक हैं। मेरी हाथकी सिलाईकी इन्होंने बखिया उधेड़ी है। इनको ऊँचा पीढ़ा देना ही है। पर तुम्हीं सलाह दो, इनसे कैसे निवटूँ ! मेरी सुईका तागा ऐसा उलझा है कि उसका ओर-छोर नहीं मिल रहा। अब ये उधड़े जोड़ सिऊँ भी तो कैसे सिऊँ ? इनका गिला है कि तुम संस्कृतके 'मनई' होकर भी उर्दूके शब्द क्यों बीच-बीचमें जोड़ते हो। भोजपुरीके वातावरणमें क्यों अपनेको बार-बार सिकोड़ते हो, क्यों बार-बार तुम भारतीय संस्कृतिके वातायनके बन्द किवाड़ खोलते हो; क्यों तुम दिनकरकी तरह सूत्र नहीं बोल पाते, क्यों तुम लक्ष्मीकान्त वर्मा की तरह भाष्य नहीं खोल पाते, क्यों तुम अपने विचारोंको जैनेन्द्रकी तरह स्वच्छन्दताका बँधाव नहीं दे पाते, और क्यों तुम मसीहा बन जमानेको बहाव नहीं दे पाते ? अरे भाई, ठहरो, दमभर दम लेने दो—नेपाली गाँजे की नहीं, सोये हुए दर्दकी ! तुम्हें जवाब देनेकी बात सोचते ही मेरी सुविधाओंकी मथुरामें हर एक भीतर आनेवाली साँसके द्वारा भेजा गया अनदेखा-सा अनुत्तरित सन्देशा करक आया—मेरी रचना ग्वालिनने परकीयाके लहजेमें ठाकुरसे शब्द माँग यह उलहना या निराशा भेजी है—

"कहा कहिए कहिबे की नहीं
मग जोवत जोवत ज्वै गयो है।
उन तोरत बार न लाई कछू
तन तें वृथा जोवन ख्वै गयो है ॥
कवि ठाकुर कुवरीके बस ह्वैं
रस में बिस बावरी ब्वै गयो है।
मनमोहन को हिलिबौ मिलिबौ
दिन चारिक चेत क्तो ह्वै गयो है ॥"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस मालाभरिणीके थोड़े-से फूल और हाथकी छाप-भर चन्दनने मुझसे मेरा गोकुल छीन लिया, मेरा वृन्दावन छीन लिया और मेरा वंशीवट छीन लिया। बहुत बहक गया, भाई माफ़ करना! मैं इकाईके लिए लिखनेसे बहाना नहीं करता, मेरी मजबूरी है, मैं अपने आगे एक शून्य लगाकर इकाईसे दहाई हो गया हूँ। सो इकाईकी सुरक्षा-कामनापूर्वक मैं तुमसे विदा लेता हूँ।

तुम्हारा
विद्यानिवास मिश्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमल-भक्षकोंके देशमें

प्रिय भाई,

निवन्धके लिए तुम्हारी प्रेमपाती मिली, पर क्या करूँ मेरे निवन्धोंके देवता उसी दिन कूच कर गये जिस दिन सुना निवन्ध लिखनेका अधिकार केवल आलोचकको है। तुम पूछोगे, कहाँ सुना। सो लो वहींकी आपबीती सुनाने जा रहा हूँ।

होमरके 'ओडेसी' काव्यमें एक द्वीपका वर्णन तो पढ़ा ही होगा, किस तरह उस द्वीपमें पहुँचते ही ट्रॉयसे लौटे हुए समुद्र-यात्री वीर कँवलगट्टोंपर टूटे और किस तरह कोड़े मार-मारकर 'ओडेसी' उन कँवल-मतवालोंको खींचकर जहाज़पर वापिस घसीट ले गया। अँग्रेज़ीके कवि टेनिसनकी तो 'द लोटस ईटर्स सॉङ्' कविता प्रसिद्ध ही है। तुम समझते होगे कि यह मात्र कवि-कल्पना है। सो वता दूँ, मेरे भाई, वह देश है और इसी धरातलपर है, जहाँ कमलोंके वे भक्षक बसते हैं, जो टेनिसनके शब्दोंमें 'इस कमल-भक्षक देशमें बसनेकी क़सम खाये हुए हैं।' ये दिन-रात इस देशका यों गुणगान किया करते हैं—

"श्रवण में चुए जाँय चुपचाप
निम्नगाओं के मदिरिम गान,
अधमुंदी आँखों में हो नींद,
नींद में सपने हों सुकुमार,
न टूटें इन सपनों के तार,
कमल के ग्रास डालते जाँय,
ओठ के भीतर ही हो वात
बात का रस हम लेते रहें,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओह यह सुख और ऐसी तृप्ति ।
उस बाँकी चोटी के तले
इस बाँकी नदियों के बीच
मधुर लय में पर अतिशय मन्द्र
हवा गाती रहती दिन-रात
उड़ाती रहती कमल-मरन्द
हर घाटी की गली-गली ।
बहुत जूझे सागर के संग,
बहुत हम गति से थे लाचार
क्यों न अब कँवलदेश में पड़े
कमल पर ले कमलों की टेक,
बेखबर ग्रीक देवों की भाँति
कहाँ नीचे बसती मनुजाति;
कनखियों देख देख मुसकाँय,
पार्श्व में कलश सुधा का धरा
हाथ से छूटें पवि-खट्वांग
लहलही खेती यों मुरझाय ।
सत्य श्रम से निंदिया है मधुर
घहरते सागर से ज्यों तीर,
ओ लहरों के थके साथियो,
हवा-पानी से लड़ना व्यर्थ,
डाँड़ पर गिर-गिर पड़ना व्यर्थ,
हमीं क्या श्रम करने को बने,
सभी लेते हैं जब विश्राम,
दोपहरी झुरझुरी बयार,
सांझ सूरज और चन्दा प्रात,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नित्य ही करते हैं आराम,
हमीं जग में सब के सिरमौर
सृष्टि के तिलक दिवस् के पुत्र
हमीं खटने को हैं दिन-रात।"

वैसे इनके आस-पास कँवलगट्टोंके छिलकोंका अम्बार देखकर ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ये कमल-भक्षक हैं, नहीं तो न तो इनके मुँहसे कमलकी सुवास आती है न इनके हाथमें ही कभी कमल विलसता है। इनके नशीले गीतोंसे इनकी परितृप्तिका अन्दाज़ लगता है, वैसे इनके चेहरे भूखे ही नज़र आते हैं। इनके 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' निर्लिप्त स्वभावसे ही इनकी पुरइन-सेजका अनुमान होता है, नहीं तो इनके चारों ओर धूसर सफ़ेदी रेगिस्तानका भ्रम पैदा कर देती है। हाँ, इनकी अर्धोन्मीलित अन्तर्दृष्टि ज़रूर बड़ी मुखर है। इनके सामने रजतरेखित लम्बी कार निकल जाये, उसे न देख पायेंगे पर इनके भीतर 'मखतूलके झूल झुलावत केसव भानु मनों सनि अंक लिये गजराज' बराबर झूमता रहेगा। आँख तो इन्द्रियोंकी उपलक्षण है। इनके कान अपने शरीरमें बहनेवाली गंगा-जमुनाका कलकल तो बखूबी सुन लेते हैं, पर बग़लमें ऑर्केस्ट्रा भी हो रहा हो तो ये बहराये रहेंगे। गन्ध तो भाई कमलकी जब बसी हो तो नाक उस गन्धसे बँध जाती है! दूसरी किसी भी गन्धको ग्रहण करनेके लिए वह सुन्न हो ही जाती है। तुम तो सिद्धोंके चक्करमें काफ़ी दिन रहे हो, तुम रसनाकी परिवर्त-प्रक्रिया समझ सकोगे। इन लोगोंकी रसना पीछे उलट गयी है। उसने शंखिनीका मुँह बन्द कर रखा है। अब अमृतकुण्डसे शंखिनीके रास्ते अमृत नीचे नहीं झरता, ऊपर-ही-ऊपर रसना उस अमृतका पान कर लेती है। महाकाल उस अमृतको सोख नहीं पाते। इस प्रकार इनकी रसपान-प्रक्रिया बड़ी विलक्षण है। उनसे कोई कहे कि केवड़ेसे वासित सुराहीका शीतल जल भी कभी-कभी पी लिया करो, बड़ी तृप्ति मिलती है, तो ये हँस पड़ते हैं, "हम तो सोम-रस छके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए हैं, हमें अब भूख-प्यास कहाँ !" स्पर्श तो इनका और विजड़ित है। पुरुवा-पछुवा उतरैया-दखिनैया किसी भी बयारका दिशा-ज्ञान इन्हें नहीं होता। सर्दी-गरमीकी बदलती हुई फ़िज़ाँका इन्हें एहसास नहीं होता। और वसन्तकी तो भाई बात ही बड़ी दूर है। इनका शाही मन शरीरके छह कमल-क्षेत्रोंमें ही षड्ऋतु-विहार किया करता है। इन्हें वसन्तके स्वागतसे क्या मतलब ? इनके प्राण क्यों अकुलायें, ये तो पर्युत्सुकीभवन् व्यापारसे परे हैं।

पर बीचमें बात ज़रा कटती है, मेरे कुछ मित्रोंको 'लोटस-ईटर्स'का तर्जुमा 'कमल-भक्षक' नहीं रुचता। मेरे एक पत्रकार मित्र हैं, उन्होंने कहा : लोटस-ईटर बड़ा सुकुमार शब्द है। अभी-अभी ही कोई पुस्तक छपी है : 'द लोटस-ईटर ऑव काश्मीर', और यह पुस्तक नेहरूपर लिखी गयी है। तो भला अँग्रेज़ीके इस मनहर शब्दका अनुवाद रसास्वादकके वज़नपर 'कमलास्वादक' होना चाहिए। दूसरे मित्र संस्कृतज्ञ हैं, नित्य ही प्रातराश करते हैं। गीतामें यज्ञशिष्टाशियोंकी बड़ी महिमा गायी गयी है, सो ठीक अनुवाद होता 'कमलाशी'। एक तीसरे दोस्त और गहरे हैं, वे वैदिक हैं। तैत्तिरीय उपनिषद्के अन्तमें उल्लसित ऋषिकी वाणी बोलती है : "अहमन्नम्। अहमन्नम्। अहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः।" अर्थात् : मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ और मैं ही अन्नाद हूँ, मैं ही अन्नाद हूँ, मैं ही अन्नाद हूँ। सो 'कमलाद' होता तो अच्छा होता। चौथे मित्रने श्राद्ध-भोजीके प्रतिमानपर 'कमल-भोजी'को अधिक पसन्द किया। हमारे यहाँ व्रजभाषाको भी तरजीह दी जाती है, सो एक व्रजविहारीने 'कञ्जन-चाखनहार' (माखन-चाखनहारकी तुकपर) शब्द रखना चाहा। छायावादी आलोचकको भोजनवाचक शब्द-मात्रसे चिढ़ है; साहित्यमें भोजनका व्यापार ही वे वर्जित मानते हैं, सो उन्होंने कमलपायी, कमलाघ्रायी या कमलानन्दी-जैसा शब्द रखनेपर बल दिया। अब भाई, मेरा समर्थन कर दो, तुम नयी कवितावाले ज़मानेके न हो !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझे तो भक्षण एक बड़ा सहज व्यापार लगता है।

खैर, इस क्षेपकके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। हाँ तो मैं कमल-भक्षकोंके बीच रहता हूँ। इन्हीं लोगोंमें-से एक नये रँगरूटने निवन्ध और वह भी ललित टाइपवाला निवन्ध लिखनेको व्यर्थका बचकाना परिश्रम वतलाया। उन्होंने उस दिन फ़रमाया, हमारी भोगयोनि है कर्मयोनि नहीं। वुद्धिवादी आदमी तटस्थ भोगके लिए सिरजा जाता है, कुछ व्यर्थके जंजालमें फँसनेके लिए थोड़े ही न। हमारा काम केवल एक कमलके स्वादको दूसरे कमलके स्वादसे विलग वतलाना है। उसी दिनसे वड़ी गम्भीरतासे सोच रहा हूँ कि क्या सचमुच मैं ही अपराधी हूँ देवताओंके बीच मनुष्य वने रहकर, या ये देवता ही नशा किये हुए हैं। वैसे कँवलगट्टे मुझे कम नहीं रुचते, लखनऊवाली वुढ़िया चाची उसका हलवा वहुत वढ़िया वनाती हैं, पर यहाँवाले कँवलगट्टे कुछ हैं भी विलक्षण। शायद यहाँके पानीका असर हो, इस पानीपर वे नशीले हो जाते हैं; या फिर यहाँकी हवामें ही आलस और नशा हो, जिसके कारण हरेक कौर नशीला कँवलगट्टा वन जाता हो। वहरहाल कहीं-न-कहीं कुछ गड़वड़ ज़रूर है। एक दिन मैंने इनका मर्म लेना चाहा, सो पहले एक स्थूल-से कमल-भक्षकके यहाँ जा धमका। देखा कि वे कँवलगट्टेके छिलके सुखाकर अमृतदानोंमें रखे हुए हैं। मेरे सामने भी उन्होंने वड़ी नफ़ासतके साथ दो-चार पेश किये। मैंने कहा, "भाई, ये तो छिलके हैं।" उन्होंने कहा, "शान्तं पापं शान्तं पापम्! यह छिलका खास गोसाईंजीके खाये हुए कँवलगट्टेका है। यह छिलका वावा मलूकदासकी कुटियाकी खुदाईमें चूहेके विलमें मिला। यह छिलका महन्त जनकललीजीके मरनेपर उनके सिरहाने सोनेकी डिवियामें रखा मिला।" मैंने इन छिलकोंको माथे लगाया और कहा, "भाईजी, आप धन्य हैं! साधना हो तो ऐसी!" उन्होंने शान्ति-निकेतनी मुद्रासे नमस्कार किया और फिर, "हें-हें, मैं तो इन सन्तोंकी चरनरजका एक छोटा-सा अधिकारी हूँ। देखिए न, लोग कहते हैं हिन्दीमें अव भी कुछ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिखा जानेको शेष है। भला बताइए, अब तो सीठी-भर बची है, रस तो सन्तोंने ले लिया।" मैंने कहा, "सीठी ही क्यों, आप भी तो हैं।"

एक दूसरे देवताके यहाँ गया, उनके यहाँ ज़रा बारीक काम होता है। नन्हीं-नन्हीं शीशियोंमें कमलका असली इत्र रखा हुआ है। मोटी नज़रसे देखनेपर शीशियाँ खाली ही लगती हैं, पर ज़रा अणुवीक्षक यन्त्र लगानेपर देखा कि इत्रके कुछ रवे कोनोंमें बैठ गये हैं। गन्ध तो खैर मैंने पायी नहीं, लेकिन लेबुल काफ़ी पुराने थे, कुछ शारदा-लिपिमें, कुछ ग्रन्थ-लिपिमें, कुछ उड़िया ताड़पत्रीमें, कुछ तो कुटिला तकमें थे। उनसे लगा कि गन्ध बड़ी पुरानी और बड़ी गहरी है। मेरे मित्र बोले, "लोग कहते हैं आलोचकका काम सरल है, न सौ काव्यका पढ़ना, एक आलोचनाके शास्त्रीय ग्रन्थका पढ़ना।" मैंने हुँकारी भरी, "हाँ, सौ सुनार और एक लुहारवाली कहावत तो प्रसिद्ध ही है।"

तीसरे जन कमल-मूलके संग्रही मिले। बोले, "जड़में गये बिना कमलकी जाति नहीं पहचानमें आती है।" मैं ज़रा मोटी बुद्धिका आदमी हूँ, आयुर्वेदमें कमल-मूलका कुछ उपयोग उन्माद आदि रोगोंमें ज़रूर सुना है, पर कमल-मूलसे कमलका काम लेनेकी विचक्षणता मैंने सीखी नहीं। मैंने कहा, "पण्डितजी, इन कमल-मूलोंका क्या कर रहे हैं?" वे बोले, "भाई, यही तो कष्ट होता है, लोग सतही चीज़ोंमें ही ऊपर-ऊपर तैरते रह जाते हैं। मैं शोध कर रहा हूँ कि प्राचीन कवियोंकी जाति क्या-क्या थी। जाति जाने वग़ैर उन कवियोंकी चर्चा निर्मूल चर्चा है। सो मैंने वे ही कमल-मूल संचित किये हैं जिनका जातीय वर्गीकरण नहीं हुआ है। इसीलिए मैंने हालके कवियोंको बिलकुल छोड़ दिया है। भला इनकी जातिकी तो नस-नसकी खबर रखता हूँ।" मैंने पण्डितजीको प्रणाम किया और उन्हें सुझाव दिया, "वैसे तो पण्डितजी, देवकी जातिका पता है, आपको उनमें कोई दिलचस्पी तो होगी नहीं।" पण्डितजी बीचमें ही बोल पड़े, "दिलचस्पी तो मुझे जातिमें है, कविमें नहीं।" मैंने अपनी बात समाप्त की, "तो भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पण्डितजी, देवका जाति-विलास आप ज़रूर पढ़ें। विविध जातियोंकी नायिकाओंके लक्षणोंसे कुछ आप कमलोंके जातीय वर्गीकरणके लक्षण निर्धारित कर सकते हैं। आखिर उत्तम नायिकाकी संज्ञा भी तो पद्मिनी हैं।"

लगभग अन्तमें मैं एक कमल-तान्त्रिकके यहाँ पहुँचा। वे वर्णको ही मूलधन मानते हैं। उन्होंने दिखलाया, छोटी-छोटी पुरज़ियोंपर कमलोंके पर्याय लिखे हुए हैं, उनके पीछे अंकगणितमें कुछ हिसाब किया गया है। देखते ही बोले, "जानते हो तुलसीदासमें त् कितनी बार आया है और कितने वर्णोंके आगे-पीछे आया है ?" मैं अवाक्। फिर बोले, "अक्षर देवता होता है, जानते हो ?" मैंने कहा, "गुरु-देवता न होता तो आप उसे जगाते ही क्यों।" गद्गद होकर बोले, "शाबाश, तुम पण्डित आदमी हो। ये हमारे पास जो नवयुवक बैठे हैं, 'नयी कविताके बिम्बविधानपर' शोध करना चाहते हैं। इनसे मैं कहता हूँ : पहले आठ गणोंकी कविता साधो, यह फ़िज़ूलका विषय छोड़ो; पर इनकी समझमें बात ही नहीं आती।" जब मैंने बेचारे नवयुवककी दयनीय सूरत देखी तो मुझे लगा कि गुरुकी अद्वैत दृष्टि इसे इस जन्ममें मिलनेसे रही। यह ग़रीब वर्णकी परमार्थ सत्ता नहीं पा सकेगा। मैंने अत्यन्त विनत होकर कहा, "गुरु, इनसे कहिए कि पहले गणितसे एम्० ए० करें, तब ये वर्णका मूल्य समझ सकेंगे।" और वे रोकते रहे, मैं क्षमा माँगकर वहाँसे चल पड़ा।

अन्तमें मैं कमल-भक्षक देशके राजाके यहाँ पहुँचा। पता चला आज कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी है। रात्रिमें नील सरस्वतीकी पूजा होगी। उसके बाद भक्तोंकी जेवनार होगी। अजीब समा देखनेको मिला। मनों कलियों, फूलों, डण्ठलों, फलों और जड़ोंके अम्बार लगे थे। एक सजीला जवान गँड़ासीसे एक बड़ेसे ठीहेपर इन्हें छाँटता चला जा रहा था। मैंने पूछा, "भाई, इतनी बेरहमीसे इन्हें क्यों छाँट रहे हो ?" बोला, "साहब, यह रद्दी माल है, अच्छा-अच्छा ओर नरम-नरम चुनकर भीतर रख लिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गया है। यह तो नौकरों-चाकरों और गाय-भैंसोंके काममें आयेगा।" आगे एक बहुत बड़ी परातमें गदराये फूलोंको उलट-उलटकर उनकी धूलि नीचे झाड़ती तन्वंगी दासी मिली। उसने बतलाया इसीमें मालिकके पूजाके वस्त्र रँगे जायेंगे। और आगे कमल-मुसल्लम बनानेके लिए सहस्रदल कमलके कुड्मलोंमें छेद किये जा रहे थे और उनके भीतरका कसैला पराग निकालकर उसमें मसाला भरा जा रहा था। भीतर चौकमें एक तुन्दिल पण्डितजी कमलके मृणालोंसे सूत निकाल रहे थे—शायद उन्हें इन्हीं सूतोंसे यज्ञोपवीत बुनना था। एक सींकिया अधेड़ पण्डित छिले कँवलगट्टोंको वेधकर माला बना रहे थे—बीच-बीचमें हुँ फट्-जैसी कोई आवाज़ उनके मुँहसे निकल जाती थी। एक नाई ठाकुर पुरइन जोड़-जोड़कर मण्डप छा रहा था, उसका छोकरा कमलोंके दल नोच-नोचकर उन्हें मूँजकी लम्बी रस्सीमें सीधे-तिरछे खोंसता चला जा रहा था, वन्दनवार तन रही थी।

एक ओर घना नीला परदा टँगा था, भीतर झाँककर देखा। नील सरस्वतीकी प्रतिमा सजायी जा रही है। गलेमें फूटे-अधफूटे कपालोंको जोड़-जोड़कर माला पहिनायी जा रही है। धीरेसे एकसे पूछा कि कहाँसे ये कपाल जुटाये गये। उसने बतलाया कि पुरुष-मेधके विशेषज्ञोंने निःशुल्क सहायता की है। जितने भी प्राचीन स्थल थे उनकी खुदाईमें जो भी कपाल-खण्ड मिले उन्हें आकलित किया गया। फिर देखा, कमरमें नयन-नलिनोंकी करधनी बाँधी जा रही है। पैरोंमें ज़िन्दा भँवरोंको बड़ी मुश्किलसे मृणालसूत्रमें बाँध-बाँधकर नूपुरकी नीलमणिके रूपमें पिरोया जा रहा है। देखते ही मैंने लम्बी साँस ली, पता नहीं मेरा मित्र भ्रमरानन्द भी कहीं न पकड़ लिया गया हो। बहुत रोकता था कि कमलोंमें न भटका करो, बड़ी जोखिम है, गजराजका तो कभी-कभी पर इन कमलजीवी निषाद छोकरोंका तो रोज़ ही खटका है। पर बावला आदमी मेरी बात क्यों सुनने लगा! इसी फ़िक्रमें कुछ अनमना-सा इधर-उधर घूम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा था कि देखा सोनेके तारमें रंग-बिरंगे घोंघे बाँधे जा रहे हैं। मनमें सोचा कि भला घोंघोंका क्या होगा, पर घोंघे बाँधनेवाले पुजारीने मुझे हँसते देख चिढ़कर कहा, "कुछ समझते भी हो, यह जलज-माला नील सरस्वतीकी मौलिपर विराजेगी !" खिसियाकर मैंने उस शिखण्डिवाहिनी महाविद्याके पुजारीको प्रणाम किया और चुपचाप मण्डपसे बाहर निकल गया। डर था कि कहीं मेरे दोनों हाथ काटकर कर्णफूल न बना दिये जायें। बाहर सड़कपर बिजलीके खम्भेके नीचे दो प्राणी थरथर-थरथर काँपते दिखे। नज़दीक गया तो देखा मेरे मित्र भ्रमरानन्द एक श्वेतवसना देवीजीको सान्त्वना दे रहे हैं। दोनों लगता है, पानीमें डुबकी लेकर अभी गीले कपड़ोंमें ही खड़े हैं। भ्रमरानन्द मुझे देखते ही लिपटने दौड़े। मैंने कहा, "भाई, मुझे क्यों गीला करते हो ? यह कौन-सी सनक सवार हुई कि तुम आजकी रातमें रामगढ़ तालमें डूबने गये थे ? और यह बेचारी औरत कौन है ?" भ्रमरानन्द बोले, "अरे तुमने नहीं पहचाना, ये माता सरस्वती हैं।" मैंने अब निश्चय कर लिया, भ्रमरानन्द पागल हो गया। एक नील सरस्वतीसे पिण्ड छुड़ाकर भागा आ रहा हूँ और यह पागल श्वेत सरस्वती दिखला रहा है। सरस्वती क्या हुईं तमाशा हो गयीं ? मैंने संस्कृत पण्डितके लहजेमें उन देवीजीसे ही प्रश्न किया, "शुभे, तुम कौन हो, किस संकटमें पड़ी हो ? इस पगलेने तो तुम्हारा कोई अपकार नहीं किया, इस दुर्गतिको कैसे प्राप्त हुई ?" वह बेचारी बाणकी महाश्वेताकी तरह एकदम बिफरकर रोने लगी। बड़ी मुश्किलसे चुप कराया तो रो-रोकर कहने लगीं, "भाई, मेरी तो बस्ती ही उजड़ गयी। कमलोंका सत्यानाश हो गया, कमलविहारी हंस कमलोंका विनाश देखकर जाने कहाँ उड़ गया। मेरे कमलके कर्णफूल तक नोच लिये गये। बस हाथमें यह रुद्राक्ष माला-भर बची है। बोलो कहाँ जाऊँ !" मैंने सोचा किसी दुःखमें पागल हो गयी हैं, सो इनकी प्राणरक्षा तो करनी ही चाहिए। अपनी चादर उतार कर दी, "लो पहले इसे पहिन लो। और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमलोंका सत्यानाश हुआ तो क्या हुआ, जुहीके झाड़ हैं, हरसिंगारके पेड़ हैं, मौसमी विलायती फूल हैं, शहरोंमें अमलतास और गुलमुहर अब बहुत लग गये, देहातोंमें नये राष्ट्रिय वनमन्त्रीकी प्रेरणासे बहुतायतमें उपजे बबूल तो हैं ही। कमलके चाहकोंको अभी इनकी सुधि भी नहीं है। यह रुद्राक्षमाला बच गयी है हो। रामका नाम लो। चलो स्टेशन कुछ चना-चबेना तुम्हें दिला दूँ।"

पर भ्रमरानन्द तो अग्निशर्मा बना हुआ था, क्रोधसे चिंघाड़ने लगा, "तुम सब राक्षस हो। साहित्यभक्षी हो। तुम लोग अपनी छोटी-सी गड़हीमें घोंघा पकड़ते-पकड़ते मारे डाहके सरों और सरोरुहोंके वैरी बन बैठे हो। बड़े चले हो चादर, चना-चबेनाका प्रबन्ध करनेवाले !"

सचमुच ही बेचारा विक्षिप्त हो गया है, क्या करूँ, कुछ समझमें नहीं आता। भ्रमरानन्दका पागलपन भी असाध्य और कमल-भक्षकोंका कमल-विद्वेषी उन्माद भी असाध्य। अब तुम्हीं बताओ निबन्ध लिखूँ कि इन उन्मादियोंके बीच शान्तिसे—बल्कि ठीक कहूँ तो युक्तिसे—रहनेका कोई उपाय सोचूँ ? कमलोंका कुसंस्कार तो मनसे जानेका नहीं। और सनकी भ्रमरानन्द तो बनजारे हैं, उनका रास्ता बड़ा बीहड़ है। सो तुम सलाह दो क्या करूँ। भ्रमरानन्दवाली बावली सरस्वतीकी बात छोड़ो भी, पर इसका क्या करूँ जो सबकी मानी-जानी सरस्वती भी नाना रूप धरके सामने रोनी सूरत बनाके खड़ी हो जाती है, "तुमसे सेवाकी न भी आशा करूँ तो कमसे-कम ममताकी तो आशा कर ही सकती हूँ। पर तुम हो कि घर-द्वारको ही बिसार बैठे, उसीको उजाड़-उजाड़कर तुम नया घर बना रहे हो। तुम अपने देशके रूपका घर्षण न सह सके, उसके लिए जूझे। विजयके बाद समुद्रकी लहरोंसे जूझे। और अब तुम जो मेरे स्वर थे, अब तुम ऐसे अन्तःस्थ हो गये कि अपनी स्वरता ही भूल बैठे। जीवनके संघर्षसे तुम्हारा वह प्यार, उस संघर्षमें खिलनेका वह अदम्य उत्साह आज कहाँ है ? उस उत्साहको तुम गटक गये। आत्मविस्मृति ही नहीं आत्म-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृप्तिके भी तुम शिकार हो गये। अब तुम्हारे लिए 'अनवाप्त और अवाप्तव्य' तीन लोकोंमें कुछ रहा ही नहीं। और तुम अपनेको पथदर्शक कहते हो, जबकि तुम स्वयं पथके पान्थ न रहकर अन्धे कूप बन गये हो। मानते तो अपनेको आलोक-स्तम्भ हो, पर तुम्हारे कड़ुवे धुँएसे तुम्हारे आस-पासकी बयार तक घुटने लगी है। किसने ऐसी माया की कि तुम मेरे पुत्र न रहकर मेरे पितामह हो गये।"

तो इस तरह ये सरस्वती अलग कान खा रही हैं। प्राण, सच कहता हूँ, मट्टा हो गये हैं। स्वाधीनताका अजीब प्रसाद है। स्वाधीनता होते ही हम अचेत हो गये। अगर मैं अतृप्तिकी बात करता हूँ तो बाग़ी क़रार दिया जाता हूँ। नूतनताकी चर्चा करता हूँ तो किशोर कहा जाता हूँ, और लहरसे लहर जनमनेकी बात करता हूँ तब तो प्रलय हो जाता है। कहाँसे यह पागल आया, जिसे अपनी गुरुत्ताका विश्वास भी नहीं है?

सो तीन साल इस कमल-भक्षी द्वीपमें बसनेको आये, मेरा जला स्वभाव विरही ही बना रहा। पर इतना आतंक ज़रूर मनपर छाया कि निबन्ध जो लिखे पड़े हैं वे भी प्रेसका मुँह नहीं देख पाये। शव बननेसे घबराता हूँ, पर शक्तिके संयोगसे भी भय लगता है। इस आकुलताके ही कारण निबन्ध न भेज सका, निबन्ध न लिखनेकी सफ़ाई-भर भेज रहा हूँ।

तुम्हारा ही
विद्यानिवास

[यह पत्र 'धर्मयुग'के नये-नये सम्पादक डॉ० धर्मवीर भारतीके स्निग्ध आमन्त्रणके उत्तरमें लिखा गया था।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनजारा मन

प्रिय,

बहुत दिनोंसे सुन रहा था कि तुम 'ग्राम्या'की सम्पादकी कर रहे हो, पर उसके अंक इधर ही देखनेको मिले। साथ ही तगादा मिला कि 'ग्राम्या' को वसन्तपञ्चमीपर अपनी पूजा भेजूँ। सो 'पत्र पुष्प तोय'में पत्र मात्र भेज रहा हूँ। मेरे गाँवमें लगनके दिनोंमें फूल इतनी जल्दी चुकते थे कि माली मरुआ और दौनाकी सुरभीली पत्तियोंसे ही कई वर-रूप विष्णुओं और कन्या-रूप लक्ष्मियोंको मौरधारी बना देता था। सो भाई, पुष्पित वाणी कपालमें लिखी नहीं और पानी-जैसा बहाव भी लेखनीको नहीं मिला, अतः पातीसे ही 'तोहा' करना।

क्या करूँ, वसन्तसे न जाने क्यों आजकल मेरा मन बहुत नहीं मिलता। यों आम, कोयल, दखिनैया, सरसों, पलाश, करौंदा, महुआ, अबीर-गुलाल, रंग-धूलि, जाने कितने दहकते बिम्ब मुझे परस गये, पर मनकी हिमानी ऐसी है कि गलनेका नाम नहीं लेती। पता नहीं, इस सिद्धपीठका असर है, जो सिरसे लेकर मन तक मूँड़ लेता है, या इस ज्ञानके महाश्मशानकी हहकारनेवाली पछुआ बयारकी कृपा है, या भाषाविज्ञानके रेफ़्रीजरेटरमें बुद्धिको निरन्तर ताज़ी बनाये रखनेका यह परिणाम है, या कौन जाने इस निवात कोनेमें अनझिप ज्योति जलानेकी मलयानिलवंचित वासनाका दुर्भाग्य ही इसका कारण हो—बहरहाल, मन जड़तामें बँधा है। वसन्तपञ्चमी आ भी जाये तो मेरी सरस्वतीके आनेकी उम्मीद नहीं है। और हाँ, भैया साहबकी सरस्वतीके भी आनेकी उम्मीद नहीं।

तुम कहोगे सरस्वतीके मन्दिरमें पहुँचकर भी, साक्षात् विद्याकी आराधना करते हुए भी, आप बिछुड़न ही भोग रहे हैं, पानीमें रहकर भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप प्यासे कुम्हला रहे हैं, धन्य हैं ! पर तुमसे सच कहता हूँ कि यह ज्ञान-साधना भी अजीब तमाशा है। मैंने यहाँ आते ही सबसे पहला उपदेश यह सुना कि अध्यापनमें प्रतिष्ठा तभी मिलेगी जब रिसर्चकी डिग्री पूँछमें लगी हो। एक बुजुर्ग-वार दोस्तने सलाह दी—साहित्यके बनजारेपनको छोड़ो, रिसर्चमें तन-मनसे लगो तभी कल्याण है। पढ़ाने लगा तो मन रमा, विद्यार्थियोंके ऋजु व्यवहारने और उत्फुल्लता दी, पर युनिवर्सिटीके अध्यापकका दम्भ फिर राह रोककर खड़ा हो गया—यह अध्यापनका कार्य नये सत्योंकी शोध नहीं, नये दर्पणोंमें बिम्ब-प्रतिक्षेप भी नहीं, नयी पीढ़ीका अभिनन्दन भी नहीं, यह मृत सत्योंके मज़ारपर धूप-दीपकी बलि है, नये दर्पणोंपर बिम्ब नहीं अनुभव-भरे दम्भकी निश्वास छोड़नेकी प्रक्रिया है, पुरानी पीढ़ी-द्वारा अपनी मान्यताके प्रति बानरी ममताकी साग्रह स्थापना है। अध्यापन और सर्जन दो विरोधी स्थितियाँ हैं, अध्यापन करना चाहते हो तो अपने अन्तर्मनकी रचनात्मक वासनासे पहले मुक्ति पा लो, नहीं तो तुम जिन्दगी-भर विद्यालयमें ही रह जाओगे। यहाँ नूतनतासे प्रीति नहीं निभ सकती, यहाँ प्रतिग्रहीताका विनय नहीं चल सकता, यहाँ प्राप्तिकी आशा नहीं पल सकती, यहाँ जीवन नदियोंसे नहीं, नहरोंसे आता है, कूपों से आता है। यहाँ प्राण बन्दी हैं जीर्ण पर्ण-राशिके, यहाँ विश्वास दिग्भ्रान्त है ज्ञानके आलोकमें, और यहाँ ममत्व आक्रान्त है अहन्ताके बोझसे। सो भाई, प्रतिष्ठाके लिए लाचार हूँ, अपनी प्रतिभाको गिरवीं रखनेके लिए। बेचनेकी तो बात नहीं सोच पाता, क्योंकि अध्यापककी मौत मरना मुझे क़बूल नहीं है, पर थोड़े दिनोंके लिए लोग पहलेकी कहानियोंमें ईमान बन्धक रख देते थे, पुण्य बन्धक रख देते थे, तप बन्धक रख देते थे, मेरे पास इतना क़ीमती ईमान, पुण्य और तप तो है नहीं, मैं प्रतिभा ही बन्धक रख दूँ। कमसे-कम, जबतक अध्यापक रहूँ, तबतक तो प्रतिभाका छाया-नुगामी इत्वर साहित्यकारसे पिण्ड छूटा रहे। तो बोलो, गिरवीं रखोगे मेरी प्रतिभा, मेरी सहृदयता, मेरे ललित निबन्धोंका पानी, मेरी कल्पनाके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खञ्जनी पंख, मेरे विश्वासोंकी गन्ध, मेरी अनुभूतियोंकी गंगाजली, मेरी आकुलताके शब्द ? पर भाई, मुझे पुरस्कार नहीं चाहिए, पद नहीं चाहिए, मान-मर्यादा नहीं चाहिए, ऐन्द्रिय सुखके साधन भी नहीं चाहिए, मुझे दरकार है एक अध्यापककी सच्ची मनोवृत्ति।

मैं गेटेके फ़ाउस्टकी तरह शैतानसे भी सौदा करनेको तैयार हूँ। मुझे बड़ी बेचैनी है कि मेरी चिर-परिचित बेचैनी अब मुझसे हाथ छुड़ाकर विलग हो गयी, पर मेरा साहित्य-लोभी संस्कार मुझसे अभी लगा हुआ है। मैं जब-जब ज्ञानीका बाना पहनता हूँ, तब-तब कोई न कोई चुनचुनाहट उसे उतार फेंकनेको विवश कर देती है। मैं जब-जब नये मानों, नये अभिमानों और नये तरानोंको कुचलनेके लिए पैर उठाता हूँ, तब-तब कोई अज्ञात आशंका इन पैरोंको पीछे खींच लेती है। मैं जब-जब अनुभूतिके शव-पृष्ठपर आसन जमाकर ज्ञानखड्गधारी कुमारभूत बोधिसत्त्वका ध्यान धरना चाहता हूँ, तब-तब उस शवमें रोमाञ्चका आभास मुझे सिहराकर अलग कर देता है। मैं महीनों तक कुछ भी नहीं लिखता, मतलब यह कि अध्यापकी आईनमें जुर्म कही जानेवाली कोई चीज़ नहीं लिखता और यह सन्तोष करता हूँ कि चलो अब अन्तःसलिला रेतमें बिलकुल लुप्त हो गयी। इतनेमें आधी रातके कुहासेमें जैसे कोई टिटिहरी पुकार पड़ती हो, वैसी कोई बड़ी वैसी-सी आवाज़ मनके सुप्त दर्द उभार देती है, क्या सचमुच अब तुम नहीं ही लिख पाओगे ? तब फिर लिखनेके लिए ज्योंही कागद, क़लमकी तलाश करने लगता हूँ, त्योंही मसानकी हज़ारों प्रेत-छायाएँ जवाब तलब करने लगती हैं : तुम्हारा बचकानापन, अभी भी नहीं गया ?

बड़ी साँसतमें जी है। तुम्हारा बनजारापन तो छूट गया, पर मेरा बनजारापन तो छूटकर भी नहीं छूटा, नखमें लगे पावसकी मेंहदीके रंगकी तरह। लिखना छूटा, पर लिखनेकी वासना नहीं छूटी। कष्ट तो यह है कि आजका अध्यापक-संस्कार तो पढ़नेपर भी प्रतिबन्ध लगाता है, अब नयी कविता पढ़नेकी आज़ादी नहीं है। हमारी युनिवर्सिटी प्रति मंगलवार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को गीताप्रवचन कराती क्या है, गीताके अर्थका दोहन कराती है और प्रति शनिवारको अब मानस-प्रवचन याने तुलसीका निचोड़ भी नियमित रूपसे कराने जा रही है। हिन्दी विभाग हर एक पखवारेमें व्रजभाषा समस्यापूर्तिका अभ्यास करानेवाला है। यहाँ प्राचीन पोथियों, पत्रिकाओं की पुरानी फ़ाइलों, साहित्यकी छूटी डगरों, काव्यके उजड़े पनघटों और भावकी रीती गागरोंकी तलाश जारी है। जिसके पास जितना ही पुराना अचार रखा है, वह अमृतदानमें दिखा-दिखाके उतना ही बड़ा आचार्य और जिसके पास जितना ही पुराना सिरका हो, वह शीशीमें भर-भर करके उतना ही बड़ा रसिक माना जाता है। और मैं तो संस्कृत भाषाका अध्यापक हूँ, एक ओर तो दावा करता हूँ कि 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः' आधी मात्राकी भी बचत हो तो हम वैयाकरणोंके घर पुत्रोत्सव मन जाता है, और दूसरी ओर हमारा नव्यन्याय अवच्छेदकावच्छिन्नोंकी लम्बी डोरी लेकर तिलको ताड़ बना देता है। एक ओर हम मूलकी रक्षाका दम भरते हैं, तो दूसरी ओर टीका करते समय हम धृ धातुसे शुरू करके इतना सब कुछ कह जायेंगे कि आपका धैर्य्य थक जायेगा और आप भूल जायेंगे कि मूलमें बात क्या थी। सो पता नहीं, कब काव्यमें मीमांसा, मीमांसामें ज्योतिष, ज्योतिषमें न्याय, न्यायमें व्याकरण और व्याकरणमें आयुर्वेद आ जाये और आप ठगे-से रह जायें। ज्ञान अखण्ड है न ? और वह भी संस्कृतका ज्ञान ! इसी अखण्डताको सिद्धिके लिए शोधके विषय चुने जाते हैं, कालिदासके काव्यमें दर्शन, कणादके वैशेषिकमें गणित, भास्कराचार्यकी लीलावतीमें काव्यतत्त्व, ऋग्वेदमें ऋतुविज्ञान, सांख्यदर्शनमें आयुर्वेदका प्रभाव, कादम्बरीका राजनीतिक महत्त्व, श्रीमद्भागवतमें भौतिक-विज्ञान, कामसूत्रकी वेदान्ती पृष्ठभूमि आदि-आदि। सो यहाँ तो साक्षात् ज्ञानका कल्पवृक्ष सामने खड़ा है। आपको अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं। आप यदि अन्यत्र जाते हैं तो आपको शाप लगेगा, 'लोपः शाकल्यस्य' का,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनैकान्तिक हेत्वाभासका, स्वतः प्रामाण्यवादका और अहमाकारक आलय विज्ञानका।

सो भाई, मैं पुराण-कोष-समितिका, हज़ारीप्रसादजीकी शब्दावलीमें, निश्शेष-भावेन सदस्य हूँ। मुझको नयेपनसे अब क्या लेना-देना? मेरा भावुक मन मालाकारके चरणोंमें प्रणत है, वह सीखना चाहता है वह कौशल जिससे नयी कलियोंको मींच दिया जाता है, ताकि वृक्ष ज़मीन छोड़कर ऊपर तन जाये, वह पाना चाहता है वह समन्वय-बुद्धि जो सब पौधोंको काट-छाँटकर एक समयितिमें स्थापित कर दे और वह अपनाना चाहता है वह संगुम्फन तन्त्र जो अलग-अलग डालोंमें खिले सुमनोंके अन्तस्तल बींधकर एक मालाका आकार उन्हें दे देता है।

तुम जंगलोंमें रहे हो, तुम मेरे गँवारपनका अन्दाज़ कुछ-कुछ लगा सकते हो। मैं लाख कोशिश करूँ, अपना अनगढ़पन ही जब नहीं सँवार पाता तो दूसरोंका ऐसा निर्मम सँवार कहाँसे सीख पाऊँगा। सो भाई, 'मैं बियाबाँमें हूँ, घरमें बहार आयी है'। वह भी ऐसा बियाबाँ कि जिसमें खुद मेरा अपनापन तक उजड़ गया हो, आसपास दरो-दीवारपर साग-ओ-सब्ज़ा उगे हुए, पर मन इस बहारसे बिलकुल अलग-थलग। वह 'और' की लहर पाकर भी 'और' होनेके लिए तैयार नहीं।

ऐसी बात नहीं कि अकेली मेरी ही सरस्वती अपने जन्म-दिनपर भी मुँह फुलाये बैठी हो। मुझे लगता है, समस्त देशकी सरस्वती वसन्तके आगमसे सामञ्जस्य नहीं रख पा रही है। नहीं तो आये दिन विश्वविद्यालय क्यों बन्द होते? छात्रों और अध्यापकोंके बीच शासक-शासित सम्बन्ध क्यों तनता? प्रगतिकी दो लहरोंके बीच एक आशंकाका प्राचीर कैसे खड़ा होता? मैं नये वसन्तको कैसे दोष दूँ, नयी लहरको कैसे अपराधी मानूँ? मुझे अपना वसन्त भूल जाये, तब न! मेरे गुरुजी में भी एक दर्प था पर वह दर्प अपने शिष्योंसे पराजित होनेमें कृतार्थ था। मुझे याद है चट्टोपाध्यायजीकी गर्वोक्ति—चट्टोपाध्याय इसलिए बड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगा कि उसके शिष्य उससे भी बड़े होंगे। अपनेसे बड़ा बनानेकी यह शक्ति हम अध्यापकोंमें-से कितनोंमें हैं ? नये वसन्तके आवाहनकी निर्मल भावना ही जब न हो तो सरस्वतीके आवाहनकी बात व्यर्थ है।

ख़ैर, इस खुदाई खिदमतगारीसे क्या मतलब। मेरी मौज-वृत्ति कुण्ठित हो गयी है इसीलिए तुम्हारी नगर-निवासिनी 'ग्राम्या'के लिए कोई नयी 'मोंज़र' नहीं भेज पा रहा हूँ। क्षमा करना। प्राचीन संस्कृति (शिष्ट या लोक, जिसे चाहो) पर मेरी समीक्षा-दृष्टि भी अब तमाशबीनकी हो गयी और तुम जानते हो भोजपुरी आदमी तमाशबीन बना रहना बहुत क़ोफ़्त समझता है, वह मैदानमें उतरनेके लिए व्याकुल हो जाता है। सो तमाशाई विवरण क्या भेजूँ ? हाँ, तुम्हारी 'ग्राम्या' बड़े-बड़े योजनाबाज़ोंके हाथमें जाती होगी। मेरा विज्ञापन छाप देना, शायद मेरी प्रतिभा (गिलटकी-ही चाहे क्यों न हो) गिरवीं रखकर कोई मेरी मनचाही क़ीमत दे दे और जब मैं फिर उसे वापिस लेना चाहूँ तो मुझसे बैंकको शरहपर सूद वसूल करके ही उसे वापिस कर दे। और सुनो, यह भी छाप देना कि उस साहूकारको पूरा अधिकार होगा कि मेरी प्रतिभाको वंशीमें लगाकर नयी मछलियाँ फँसाता रहे, मुझे कोई उज़्र न होगा। मैं मत्स्य-न्यायका युगधर्म नहीं निभा पाता तो मेरी गिरवीं रखी प्रतिभा ही निभा ले।

ज़रा चिट्ठी भ्रमरानन्दी ढंगपर लम्बी और विशृंखल हो गयी। पर यक़ीन मानो भ्रमरानन्द बेचारे एक दिन रामगढ़ तालाबमें कमलोंकी खोजमें गये, सो एक धोबीके पाटेसे फिसलकर डूब गये। उनका कुछ अता-पता नहीं चला। वे रहते तो आपकी 'ग्राम्या'के लिए ज़रूर केशरिया पाती भेजते। पर

मैं हूँ
निपट विद्यानिवास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक-हितकारी
मौलिक-साहित्यका निर्माण

•

संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

•

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी ५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri